ISSN: 2348-5558

# शिक्षा संवाद

संपादकीय सलाहकार: डॉ. चाँदकिरण सलूजा

संपादक: वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

सह-संपादक: पूजा सिंह

वर्ष : 7, अंक : 1-2

जनवरी-दिसम्बर -2020

सयुंक्त अंक

**संवाद शिक्षा समिति**

# शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

ISSN: 2348-5558

(Peer-Reviewed)
Refereed Journal

## अर्ध-वार्षिक

वर्ष: 7/ अंक: 01-02/ जनवरी-दिसम्बर, 2020
**सयुंक्त अंक**

**प्रकाशन की तिथि**
**31 दिसम्बर, 2020**

**सम्पादकीय सलहाकार**
डॉ. चाँद किरण सलूजा

**सम्पादक**
डॉ. वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

**सह- सम्पादक**
डॉ. पूजा सिंह

**संवाद शिक्षा समिति, दिल्ली का प्रकाशन, दिसम्बर-2020**

पत्रिका के सर्वाधिकार शिक्षा संवाद के पास है। इस पत्रिका का गैर-व्यावसायिक उपयोग किया जा सकता है। ऐसा करते हुए सम्पादक व प्रकाशक का ज़िक्र करना ज़रूरी है। इसके अलावा किसी अन्य उपयोग के लिए, मसलन, पाठ की रीमिक्सिंग, उसमें बदलाव या उसे आधार बनाते हुए कुछ करने के लिए प्रकाशक व सम्पादक से अनुमति लेना ज़रूरी है।

# शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

वर्ष: 7/ अंक: 01-02/ जनवरी-दिसम्बर, 2020

**सयुंक्त अंक**



**सम्पादकीय सलहाकार**: डॉ. चाँद किरण सलूजा

**सम्पादक:** डॉ. वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

**सह- सम्पादक:** पूजा सिंह

**सम्पादन मण्डल** : सदस्य

प्रो. लोकनाथ मिश्रा, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, मिज़ोरम

डॉ. आभा श्री, सह-आचार्या,मिज़ोरम विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. प्रवीण कुमार, श्री राम इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर एडुकेशन, दिल्ली

डॉ. रितेश सिंह, इंस्टीट्यूट ऑफ होम इक्नॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. हेदर अली, शिक्षा संकाय,मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, तेलंगाना



**संपर्क**

**शिक्षा संवाद**

RZ-673/135, गली न. 19A, साध नगर, पार्ट -2, पालम कालोनी, नई दिल्ली 110045.

दूरभाष - 09868210822. (सम्पादक), ई मेल - sheakshiksamwad@gmail.com



**सदस्यता राशि**

| | व्यक्तिगत | संस्थागत |
|---|---|---|
| एक प्रति | 250 | 350 |
| वार्षिक (2 प्रतियाँ ) | 400 | 600 |
| दो -वर्षीय (4 प्रतियाँ ) | 800 | 1200 |
| तीन वर्षीय (6 प्रतियाँ) | 1000 | 1600 |
| आजीवन (प्रकाशन तक) | 15000 | 20000 |

**शिक्षा संवाद की सदस्यता के लिय केवल बैंक ड्राफ्ट या चेक के माध्यम से 'संवाद शिक्षा समिति' दिल्ली के नाम भेजें।**

आवरण चित्र : कुसुम ने इंटरनेट और केनवा की मदद से बनाया है।

# पाठकों एवं लेखकों हेतु दिशानिर्देश एवं शोध नियमावली


शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

**'समकक्ष व्यक्ति समीक्षित जर्नल'**

**(PEER REVIEWED-REFEREED JOURNAL)**

**ISSN: 2348-5558**


**शोध आलेख भेजने संबंधी ज़रूरी निवेदन**

**नमस्कार**,

शिक्षा संवाद अर्ध-वार्षिक पत्रिका है। एक वर्ष में दो सामान्य अंक 30 जून, और 31 दिसम्बर को छपते हैं। रचना प्रकाशन हेतु स्वीकृत हुई या नहीं इसकी जानकारी प्रकाशन की तारीख के पंद्रह दिन पहले ही दी जाती है इससे पूर्व नहीं। ज्यादा जानकारी के लिए हम नीचे कुछ सामान्य सूचना इस प्रकार है-

(1) **आलेख का क्षेत्र:** शिक्षा और साहित्य

(2) **प्रकाशन का स्वरुप :**हमारी पत्रिका वर्तमान प्रकाशन तक केवल प्रिंट वर्जन में ही उपलब्ध है। हम छापकर कोई या किसी भी प्रकार का पीडीऍफ़ वर्जन भी नहीं भेज पाते हैं। सदस्यता के अनुसार तथा मांग के अनुरूप ही प्रतियां हम छपवाते हैं जिन्हें आपको प्रकाशक से खरीदनी होती है। हमारी पत्रिका कोई भी इम्पेक्ट फेक्टर स्केल अभी तक जनरेट नहीं किया गया है।

(3) **सामान्य अंक विशेषांक /:** हम हमेशा सामान्य अंक ही प्रकाशित करते हैं। भविष्य में विशेषांक प्रकाशित करने की योजना आवश्य है। जब भी विशेषांक लाने की योजना होगी तो पाठकों एवं लेखकों को पत्रिका के माध्यम से सूचित किया जाएगा।

(4) **तकनीकी पक्ष:** एक बार यदि आपकी कोई रचना शिक्षा संवाद के किसी अंक में प्रकाशित होती है तो उसके तुरंत बाद वाले अंक में आपकी रचना प्रकाशित नहीं होगी। हम 'एक वर्ष - एक रचना' की नीति का अनुसरण करते हैं। ऐसा करके हम अधिक लेखकों तक तथा अधिक पाठकों तक अपनी पहुँच बना सकते हैं। कुछ अन्य तकनीकी पक्ष जिनका ध्यान रखा जन चाहिए-

- भाषा हिंदी केवल : (नोट :शिक्षा संवाद में अंग्रेजी में आलेख नहीं छापे जाते हैं)
- फॉण्ट : केवल Unicode-kokila
- फॉण्ट साइज़ : 18

- सन्दर्भ एंड नोट : ( फूट नोट अस्वीकार्य हैं।)
- फाइल वर्ड :2007 - 2010
- पीडीऍफ़ फाइल नहीं भेजें।
- आलेख वाट्स एप पर स्वीकार नहीं कर सकेंगे।
- स्पेसिंग :Top 1 cm, Bottom 1 cm, Left 1 cm, Right 1 cm
- शोध : सार-150 शब्द
- 'बीज शब्द/ Key Words' : न्यूनतम 5
- आलेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य हो।
- सन्दर्भ में लिखने का नियम: APA 6 केवल
- लेखक का नाम, पद, पता, ईमेल-, मोबाइल नंबर आलेख के अंत में ज़रूर लिखें।
- हमारा ई: मेल पता है- shaikshiksamwad@gmail.com
- वर्तनी की अशुद्धियों का विशेष ध्यान रखें। आलेख में वर्तनी की अशुद्दियां होने पर आलेख अस्वीकृत होने के सर्वाधिक अवसर मौजूद रहते हैं।

**(5) संलग्न /Attachments**

- आलेख की मौलिकता और अप्रकाशित होने का सत्यापन। आप लेख भेजते समय लेख के साथ ही ईमेल - में ही लिखकरभेज सकते हैं अथवा प्रयास करें की यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त किसी Plagrismsoftwere से प्राप्त रिपोर्ट संलग्न करें तो बेहतर होगा
- आपका फोटो और आलेख में शामिल फोटो, सारणियाँ, टेबल्स, ग्राफ आदि अलग से अटैच करके भेजें।
- आपका कोई एक पहचान पत्र जिसमें फोटो लगा हुआ हो।

**(6) प्राथमिकता:** सबसे पहले आलेख शामिल करते समय हम अपनी पत्रिका के सदस्यों को प्राथमिकता देते हैं। आपका आलेख स्वीकृत होने पर ही हम सदस्य बनने की अपील आपको भेजेंगे।

**(7) अंतिम निर्णय:** सामग्री चयन, सम्पादन और प्रकाशन का अंतिम निर्णय सम्पादक मंडल का रहेगा। हम आपकी रचना में सम्पादन के दौरान अपनी तरफ से कोई अंश जोड़ेंगे नहीं पर कुछ अंश ज़रूरत के अनुसार काट-सकेंगे। हटा हुए करते छाँट शोध पत्रों के मामले मे समीक्षकों की समीक्षा अनुसार ही निर्णय नैया जाएगा।

**(8) स्वैच्छिक :** आपको अपनी शिक्षा संवाद के प्रकाशित एक अंक या चयनित रचनाएँ पढ़कर एक पृष्ठ की लिखित टिप्पणी भेजनी होगी कि इस पत्रिका को लेकर आपकी राय क्या है? ताकि हम यह जान सकें कि आप पत्रिका की वैचारिकी से परिचित हैं कि नहीं।

**(9) चयन का प्रोसेज:**

## Screening

- शिक्षा संवाद में सबसे पहले प्राप्त रचना को सम्पादक द्वारा स्क्रीन करके चुना जाता है। इस स्तर पर रचना अस्वीकृत होते ही लेखक को तुरंत जवाबी ई मेल-भेजते हैं। हमारे यहाँ यह स्क्रीनिंग कहलाता है।

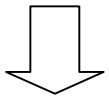

## Review Process

- चयनित रचनाओं को सम्बंधित एक्सपर्ट या एक्सपर्ट के पैनल के पास भेजा जाता है जो कंटेंट पर फाइनल निर्णय लेते हैं। इसे रिव्यू कहते हैं। जानकार व्यक्ति अपनी सीमाओं को स्वीकारते हुए रचनाकार के लिए संक्षिप्त टिप्पणी के साथ आलेख को स्वीकृत या अस्वीकृत करता है। यह निर्णय अनंतिम माना जाता है।

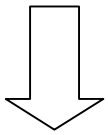

## Proof Reading

- तीसरी स्टेज पर हमारे सह करके सम्पर्क से लेखक लिए के अपडेट संबंधी कंटेंट और फोर्मेट सम्पादक-होता करना सहयोग का पत्रिका से लिहाज के गुणवत्ता को रचनाकार यहाँ हैं। बनाते योग्य छपने को रचना है। यहाँ भी गुणवत्ता बनाए रखने के क्रम में आलेख को ज्यादा दिक्कतभरा होने पर अस्वीकृत किया जा सकता है।

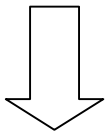

## Ready to Print

- यहीं अंतिम रूप से चयनित रचना की प्रूफ रीडिंग की जाती है। अंक छपने की तारीख से दस दिन पहले सभी रचनाएँ तकनीकी टीम के पास प्रकाशन हेतु भेजी जाती है। इस पूरी प्रक्रिया के बारे में सम्बंधित लेखक को लगातार अपडेट करने का प्रयास करते हैं। अंक छपने के बाद लेखक को प्रकाशित रूप को चेक करने के लिए ईमेल से शेयर किया जाता है। सभी की संतुष्टि के बाद अनुक्रमणिका जारी की जाती है।

## प्रूफ हेतु ध्यान रखने योग्य बातें

1. सबसे उपर पहले विधा का नाम लिखें जैसे कविता -, शोध आलेख, आलेख, साक्षात्कार या कहानी आदि।
2. पहली पांच पंक्तियों में ही अगर वर्तनी की भारी अशुद्धियाँ हैं तो आलेख का अस्वीकृत होना तय हो जाएगा।
3. शुरुआती रिव्यू में भी चयन का एक ज़रूरी आधार वर्तनी की शुद्धता है।
4. रचना का शीर्षक और लेखक का केवल नाम लिखकर बोल्ड कर दें।
5. 'शोध सार' को बोल्ड करें।
6. 'बीज शब्द' को बोल्ड करें।
7. प्रत्येक पैरेग्राफ के बाद एक इंटर का गेप रखें।
8. पैरेग्राफ की शुरुआत में एक टैब लगाएं।

9. पूरे आलेख में किसी तरह की फोर्मेटिंग से बचें।
10. गणित के अंक अंतर्राष्ट्रीय मानक संख्या 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10, में ही लिखें।
11. प्रत्येक सन्दर्भ जब हू हू कहीं से लिया गया है तो-ब-"...." कौमा के अंदर लिखें। संदर्भ समाप्त होने पर संदर्भ संख्या लिखें जैसे 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10, और इसका विस्तृत संदर्भ आलेख के अंत में उसी क्रम से सूचीबद्ध करें।
12. आलेख की वर्ड फाइल में अपना खुद का फोटो इन्सर्ट न करें।
13. प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर पूर्ण विराम चिहन अंतिम शब्द के तुरंत बाद चिपका हुआ हो न कि एक स्पेस के बाद। इसी तरह अल्प विराम ), ) भी शब्द से चिपका हुआ हो और उसके बाद एक स्पेस ज़रूर हो।
14. ( ) के बीच लिखे शब्दों से यह कोष्ठक एकदम सटे हुए हों।
15. ( - ) योजक चिहन के दोनों तरफ के शब्द योजक चिहन से सटे हुए हों न कि एक स्पेस के बाद।
16. प्रत्येक शब्द के बीच सिंगल स्पेस हो न कि इससे ज्यादा अनावश्यक स्पेस।
17. आलेख में ज़रूरी सन्दर्भ के अलावा अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल से बचना चाहिए।
18. 'मूल आलेख' शब्द बोल्ड करें।
19. आलेख में जितने भी उपशीर्षक- आते हैं उन्हें बोल्ड किया जा सकता है।
20. कवितांश के अलावा किसी भी रेफरेंस को बोल्ड नहीं करना हैं ।
21. आलेख के अंत में 'निष्कर्ष' ज़रूर लिखना है।
22. याद रहे शोधसार- और निष्कर्ष में किसी भी रेफरेंस का उपयोग नहीं करना वह एकदम आपकी अपनी भाषा में हों तो बेहतर रहेगा।
23. शोध आलेख न होकर साधारण आलेख होने परशोधसार बीजशब्द-निष्कर्ष आदि तकनिकी पक्षों से छूट मिलेगी।
24. 'सन्दर्भ' बोल्ड करके लिखें और सूची बनाकर समस्त संदर्भ पुस्तक के लेखक का नाम, लेखक का उपनाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या क्रम से लिखें।
25. आलेख के अंत में पांच पंक्ति का पता लिखना हैं जहां क्रम से अपना नाम, पद, संस्था, शहर, ईमेल-, मोबाइल नंबर बोल्ड अक्षरों में लिखना हैं।
26. पूरेआलेख का फॉण्ट एक ही तरह का 'Unicode-Kokila' हो और साइज़ भी एक जैसी ही '18' रखनी है।
27. पूरा आलेख 'जस्टिफाइड' हो न कि लेफ्ट या राईट अलाइनमेंट के साथ।
28. सन्दर्भ लिखने में हमारी नियमावली का पालन शत प्रतिशत करना ही है।

# अनुक्रम

**लेखकों हेतु दिशानिर्देश** 3

**संपादकीय/संवाद**

- वीरेंद्र कुमार चंदोरिया 9

**संवाद**

- भारत में जाति प्रथा: डॉ. भीमराव आंबेडकर 11

**कहानी**

- बांका जमीनदार: प्रेमचंद 29

**आलेख**

- शिक्षा और संस्कृति: श्रुति टंडन 37
- शिक्षण प्रशिक्षण में सूक्ष्म शिक्षण और उसके शैक्षिक निहितार्थ : संजीव कुमार पाठक 43

**अनुभव**

- कोविड में दिल्ली में फंसी जिंदगी और आपबीती : राकेश विश्वकर्मा 51

**कविता**

- पूछता क्यों शेष कितनी रात?: महादेवी वर्मा 61

इस पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों केहैं। संपादन मंडल और पत्रिका से जुड़े सदस्यों की इन विचारों से सहमति हो यह ज़रूरीनहीं है।

# संवाद

मानवीय संकट, यानी ऐसे संकट जो मानवता, समाज और व्यक्तिगत जीवन पर गहरा असर डालते हैं, जीवन का एक अभिन्न हिस्सा होते हैं। ये संकट प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध, सामाजिक असमानताओं, मानसिक बीमारियों, आर्थिक तंगी, या स्वास्थ्य संकटों के रूप में प्रकट हो सकते हैं। इन संकटों से उबरने के लिए केवल शारीरिक प्रयास ही नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक साहस की भी आवश्यकता होती है। हर संकट एक चुनौती है, लेकिन साथ ही यह अवसर भी प्रदान करता है, जो हमें आत्मनिर्भर, सशक्त और resilient (लचीला) बनाता है।

मानवीय संकट से उबरने का पहला कदम हमारी मानसिक स्थिति को सकारात्मक बनाए रखना है। संकट के समय सबसे अधिक प्रभावित हमारे विचार होते हैं। अगर हम नकारात्मक विचारों के जाल में फंस जाते हैं, तो हमारी समस्या का समाधान ढूंढना और उसे पार करना बेहद कठिन हो जाता है। सकारात्मक सोच के माध्यम से हम अपनी स्थिति को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और उससे निकलने के उपाय खोज सकते हैं। यह सही समय होता है जब हमें अपनी मानसिक शक्ति को पहचानने की आवश्यकता होती है। हमारे दिमाग का दृषटिकोन संकट से उबरने में निर्णायक भूमिका निभाता है। जब हम संकट में होते हैं, तो सबसे पहले खुद से यह सवाल करें: "क्या मैं इस स्थिति को बदलने के लिए कुछ कर सकता हूँ?" अगर हां, तो उस दिशा में कदम बढ़ाना शुरू करें। अगर नहीं, तो यह समझें कि यह भी एक अस्थायी स्थिति है और यह भी बीत जाएगा। यही मानसिक स्थिति संकट से उबरने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण है।

मानवीय संकट से उबरने के लिए आत्मविश्वास का होना अत्यंत आवश्यक है। आत्मविश्वास हमें यह विश्वास दिलाता है कि हम किसी भी समस्या का समाधान निकाल सकते हैं। संकट चाहे जितना भी बड़ा हो, अगर हम खुद पर विश्वास रखते हैं और अपनी ताकत को पहचानते हैं, तो हम उसे पार कर सकते हैं। आत्मविश्वास और साहस से संकट के खिलाफ एक सकारात्मक लड़ाई लड़ी जा सकती है। जब हमें यह विश्वास हो जाता है कि हम मुश्किलों का सामना कर सकते हैं, तो संकट के समय में हमें डर महसूस नहीं होता, बल्कि हम समस्या का हल ढूंढने में जुट जाते हैं। आत्मविश्वास संकट से उबरने का सबसे महत्वपूर्ण हथियार बन सकता है, क्योंकि यह हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। संकट से उबरने के लिए धैर्य की आवश्यकता होती है। हर संकट का समाधान तुरंत नहीं मिलता। समय की आवश्यकता होती है, साथ ही धैर्य और समझदारी की। संकट के समय हमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। यह जरूरी है कि हम अपने समय का सही तरीके से प्रबंधन करें, ताकि हम सही निर्णय ले सकें और संकट के समाधान के रास्ते पर जा सकें। धैर्य हमें यह सिखाता है कि हर परिस्थिति अस्थायी होती है। जो संकट आज हमारे सामने है, वह कल खत्म हो सकता है। इसलिए, हमें मानसिक शांति बनाए रखनी चाहिए और धीरे-धीरे समाधान की ओर बढ़ना चाहिए। संकट के दौरान जल्दबाजी करने से केवल और जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं।

संकट से उबरने के दौरान हमें यह समझना चाहिए कि हम अकेले नहीं हैं। संकट के समय में एकजुटता और सामूहिक प्रयास अधिक प्रभावी होते हैं। जब हम एक-दूसरे की मदद करते हैं, तो न केवल हमारी स्थिति बेहतर होती है, बल्कि हम एक सामूहिक भावना का हिस्सा बन जाते हैं, जो समाज के निर्माण में मदद करती है। संकट के समय यह जरूरी है कि हम दूसरों से मदद लें और खुद भी जरूरतमंदों की सहायता करें। यह केवल समाज को मजबूत बनाता है, बल्कि हमें यह एहसास कराता है कि संकट के बावजूद हमें एक-दूसरे की जरूरत है। दूसरों की मदद करने से न केवल हमारा आत्मविश्वास बढ़ता है, बल्कि हमें मानसिक शांति भी मिलती है। किसी भी संकट से उबरने के लिए हमें शिक्षा और जागरूकता की आवश्यकता होती है। किसी भी संकट से उबरने का एक बड़ा तरीका है अपने पास उपलब्ध जानकारी और संसाधनों का सही तरीके से उपयोग करना। अगर हम किसी समस्या से जूझ रहे हैं, तो उसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करें। उदाहरण के लिए, कोविड-19 महामारी के दौरान, जब लॉकडाउन हुआ, तो लोगों ने इंटरनेट और अन्य स्रोतों से वायरस के बारे में जानकारी प्राप्त की और उसे फैलाने का काम किया। इसी प्रकार, किसी आर्थिक संकट, मानसिक तनाव या अन्य संकट से उबरने के लिए भी हमें शिक्षा और जागरूकता के

माध्यम से उपायों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। संकट के समय जब हमें सही जानकारी मिलती है, तो हम अपनी स्थिति को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं और समाधान ढूंढ सकते हैं।

संकट से उबरने के बाद यह समय होता है जब हमें जीवन की दिशा पर पुनः विचार करना चाहिए। किसी भी संकट से उबरने के बाद व्यक्ति में एक नई जागरूकता उत्पन्न होती है। यह वह समय है जब हमें अपनी पुरानी आदतों, सोच और दृष्टिकोण पर पुनः विचार करना चाहिए। कभी-कभी संकट हमें यह सिखाता है कि हम जीवन में क्या सुधार कर सकते हैं। यह संकट का समय आत्ममूल्यांकन का होता है। क्या हम पहले जैसा जीवन जी रहे थे, वह संतोषजनक था? क्या हम अपनी ज़िंदगी के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दे रहे थे? संकट से उबरने के बाद हमें अपनी जीवन शैली और मानसिकता को बदलने के बारे में सोचना चाहिए। हर संकट हमें कुछ सिखाता है। जीवन में कभी भी कोई स्थिति स्थिर नहीं रहती। संकट से उबरने के बाद हमें यह समझने की जरूरत होती है कि इस अनुभव से हमने क्या सीखा। यह सीख हमें भविष्य में अधिक सशक्त और समझदार बनाती है। संकट के दौरान हम जो मानसिक और भावनात्मक संघर्ष करते हैं, वह हमें जीवन को बेहतर तरीके से समझने का मौका देता है। उदाहरण के लिए, कोविड के दौरान हमने सीखा कि स्वास्थ्य और सुरक्षा हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। इसके अलावा, संकट के समय हमें एकजुटता और सहयोग की महत्ता का एहसास हुआ। इसलिए, संकट से उबरने का एक बड़ा फायदा यह होता है कि यह हमें भविष्य के लिए तैयार करता है। मानवीय संकट जीवन में आए तो सही, लेकिन इनसे उबरने के रास्ते हमेशा मौजूद रहते हैं। संकट से उबरने के लिए हमें सकारात्मक सोच, आत्मविश्वास, धैर्य और एकजुटता की आवश्यकता होती है। यह महत्वपूर्ण है कि हम खुद को समझें, अपनी स्थिति को स्वीकार करें और इसके बाद समाधान की दिशा में कार्य करें। संकट से उबरने के बाद जो जीवन मिलता है, वह अधिक सशक्त और जागरूक होता है। संकट केवल हमारी क्षमता को परखने का अवसर नहीं होता, बल्कि यह हमें जीवन के वास्तविक अर्थ को समझने का भी मौका देता है।

संकट की इस घड़ी में हम भी पत्रिका के लिए लेखों की अल्पता से जूझ रहे हैं, इस बार यह पत्रिका का सयुंक्त अंक है। इसी कड़ी में संवाद के इस अंक में हमने प्रयास किया है कि हम अलग अलग विचारों को पाठकों के सामने रखें। भारत में जाति प्रथा नाम से प्रकाशित आंबेडकर जी लेख लेख जाति के वर्चस्व को तोड़ने का प्रयास करता है। इसी कड़ी में प्रेमचंद की कहानी बांका जमीदार जमीदारी प्रथा पर विचार करती है। संस्कृति और शिक्षा की विचारगी श्रुति की कलम से लिखी गई है। संजीव का वैचारिक लेख शिक्षण प्रकाशिक्षण की पृष्ठभूमि का है जो चिंतन पर सूक्ष्म शिक्षण के निहितार्थ का संक्षिप्त परिचय देता है । राकेश ने अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है। अंत में कवि महादेवी की एक सुदर 'पूछता क्यों शेष कितनी रात' कविता है जो अपनी भाषा के विचार के साथ लिखी गई है ।

अब दो शब्द आपसे आप हमे इस पत्रिका को बेहतर बनाने के लिए, अपने विचारों को रखने और अपने अनुभवों को सांझा करने के लिए सहयोग कर सकते हैं। हम आपसे अनुरोध करते है कि आप हमे पत्रिका के इस अंक पर अपने विचारों से अवगत कराएं । इसके लिए आप हमे पत्र द्वारा, इ-मेल द्वारा या दूरभाष पर भी संपर्क कर सकते हैं। पत्रिका आपके सहयोग से चलती है इसलिए आप अपने मित्रों को, शिक्षकों को बच्चों को पत्रिका के बारे में बताएं , उनसे पत्रिका को पढ़ने को कहें और आप उन्हे पत्रिका उपहार स्वरूप भी दे सकते हैं । आप पत्रिका की सदस्यता अवश्य लें। अगले अंक की प्रतीक्षा के साथ धन्यवाद।

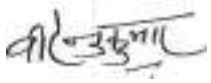

आपका

वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 11-28
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

संवाद

# भारत में जाति प्रथा

*डॉ. भीमराव अंबेडकर

**** भीमराव आंबेडकर द्वारा कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यू यॉर्क (अमेरिका) में 9 मई 1916 को डॉ. ए.ए. गोइडनवेसकर अंथ्रोपोलोजी सेमिनार मेंकास्ट इन इंडिया : द मैकानिज़म, जेनेसिस एण्ड डेव्लपमेंट नाम से एक शोध पत्र प्रस्तुत किया था। इसी पत्र का हिंदी में भावानुवाद वीरेंद्र कुमार चंदोरिया ने किया है।***

मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि हममें से बहुत लोगों ने स्थानीय, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय संग्रहालय देखे होंगे, जो सभ्यता का समग्र रूप प्रस्तुत करते हैं। इसबात पर कुछ लोगों को ही विश्वास आएगा कि संसार में मानव संस्थाओं का प्रदर्शन भी होता है। मानवता-चित्रण विचित्र विचार है, कुछ को यह बात अजीब गोरखधंधा लग सकती है, किंतु नृजाति-विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते आप इस अनुसंधान पर कठोर रुख नहीं अपनाएंगे और कम से कम आपको यह आश्चर्यजनक नहीं लगना चाहिए।

मेरा मानना है कि सबने कुछ ऐतिहासिक स्थल देखे होंगे, जैसे पोम्पियाई के खंडहर और बड़ी उत्कंठा से गाइडों की धाराप्रवाह जबान में इन खंडहरों का इतिहास सुना होगा।मेरे विचार में नृजाति-विज्ञान का विद्यार्थी भी एक मायने में गाइड ही है। वह अपने प्रकृतरूप की तरह (शायद अधिक गांभीर्य और स्व-ज्ञानार्जन की आकांक्षा के साथ)सामाजिक संस्थाओं को यथासंभव निष्पक्षता से देखता है और उनकी उत्पत्ति तथा कार्यप्रणाली का पता लगाता है।

इस गोष्ठी का विचारणीय विषय है - आदिकालीन बनाम आधुनिक बनाम आधुनिक समाज। इसमें भाग लेने वाले मेरे सहयोगियों ने इसी आधार पर आधुनिक या प्रागैतिहासिक संस्थाओंके सार्थक उदाहरण दिए हैं, जिनमें उनका अध्ययन है। अब मेरी बारी है। मेरे आलेख का विषय है-'भारत में जातिप्रथाः संरचना, उत्पति और विकास।'

आप जानते हैं कि यह विषय कितना जटिल है, जिसके संबंध में मुझे अपने विचार व्यक्त करने हैं। मुझसे ज्यादा योग्य विद्वानों ने जाति के रहस्यों को खोलने का प्रयासकिया है, किंतु यह दुःख की बात

है कि यह अभी तक व्याख्यायित नहीं हुआ है और लोगों को इसके बारे में अल्प जानकारी है। मैं जाति जैसी संस्था की जटिलताओं के प्रतिसजग हूं और मैं इतना निराशावादी नहीं हूं कि यह कह सकूं कि यह पहेली अगम, अज्ञेय है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि इसे जाना जा सकता है। जाति की समस्या सैद्धांतिकऔर व्यावहारिक रूप से एक विकराल समस्या है। यह समस्या जितना व्यावहारिक रूप से उलझी है, उतना ही इसका सैद्धांतिक पक्ष इन्द्रजाल है। यह ऐसी व्यवस्था है, जिसकेफलितार्थ गहन हैं। होने को तो यह एक स्थानीय समस्या है, लेकिन इसके परिणाम बड़े विकराल हैं। "जब तक भारत में जातिप्रथा विद्यमान है, तब तक हिन्दुओं मेंअंतर्जातीय विवाह और बाह्य लोगों से शायद ही समागम हो सके, और यदि हिंदू पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी जाते हैं तो भारतीय जात-पांत की समस्या विश्व की समस्याहो जाएगी।"

सैद्धांतिक रूप से अनेक महान विद्वानों ने, जिन्होंने श्रम की चाह की खातिर इसके उद्भव तक पहुंचने का प्रयास स्वीकारा था, उनको निराश होना पड़ा। ऐसी स्थिति मेंमैं इस समस्या का उसकी समग्रता की दृष्टि से समाधान नहीं कर सकता। मुझे आशंका है कि समय, स्थान और कुशाग्रता मुझे असफल कर देगी, यदि मैंने इस समस्या को वर्गीकृतन करके अपनी सीमाओं से अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। जिन पक्षों को मैं निरूपति करना चाहता हूं, वे हैं, जातिप्रथा की संरचना, उत्पत्ति और इसका विकास। मैंइन्हीं सूत्रों तक अपने आपको सीमित रखूंगा, केवल आवश्यकता पड़ने पर स्पष्टीकरण देते हुए ही विषयांतर करूंगा। विषय का प्रतिपादन करते हुए मैं निवेदन करूंगा कि प्रसिद्ध नृजाति-विज्ञानियों के अनुसार, भारतीय समाज में आर्यों, द्रविड़ों, मंगोलियों और शकों का सम्मिश्रण है। ये जातियां देश-देश से शताब्दियों पूर्व भारतपहुंचीं और अपने मूल देश की सांस्कृतिक विरासत के साथ यहां बस गईं तब इनकी स्थिति कबायली वाली थी। ये अपने पूर्ववर्तियों को धकेल कर इस देश के अंग बन गए। इनकेपरस्पर सतत संपर्कों और संबंधों के कारण एक समन्वित संस्कृति का सूत्रपात हुआ, परंतु भारतीय समाज के विषय में यह बात कहना असंगत है कि वह विभिन्न जातियों कासंकलन है। पूरे भारत में भ्रमण करने पर दिक्दिगंत में यह साक्ष्य मिलेगा कि इस देश के लोगों में शारीरिक गठन और रंग-रूप की दृष्टि से कितना अंतर है। संकलन सेसजातीयता उत्पन्न नहीं होती है। यदि रक्त-भेद की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज विजातीय है, हां यह संकलन सांस्कृतिक रूप से अत्यंत गुंथा हुआ है। इसी आधारपर मेरा कहना है कि इस प्रायद्वीप को छोड़कर संसार का कोई देश ऐसा नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से ही सुगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन और अटूट है, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है। इसी सांस्कृतिक एकरूपता के कारण जातिप्रथा इतनीविकराल समस्या बन गई है कि उसकी व्याख्या करना कठिन कार्य है। यदि हमारा समाज केवल विजातीय या सम्मिश्रण भी होता, तब भी कोई बात थी, किंतु यहां तो सजातीय समाजमें भी जातिप्रथा घुसी हुई है। हमें इसकी उत्पत्ति की व्याख्या के साथ-साथ इसके संक्रमण की भी व्याख्या करनी होगी।

आगे विश्लेषण करने से पूर्व हमें जातितंत्र की प्रकृति पर भी विचार करना होगा। मैं नृजाति-विज्ञान के कुछ विद्वानों की परिभाषाएं प्रस्तुत करना चाहता हूं -

1. जाति के संबंध में फ्रांसीसी विद्वान श्री सेनार का सिद्धांत है-तीव्र वंशानुगत आधार पर घनिष्ठ सहयोग, विशिष्ट पारंपारिक और स्वतंत्र संगठनों से युक्त, जिसमें एक मुखिया और पंचायत हो, उसकी समय-समय पर बैठकें होती हों, कुछ उत्सवों पर मेले हों, एक सा व्यवसाय हो, जिसका विशिष्ट संबंध रोटी-बेटी व्यवहार से औरसमारोह अपमिश्रण से हो और इसके सदस्य उसके अधिकार क्षेत्र से विनियमित होते हों, जिसका प्रभाव लचीला हो, पर जो संबंद्ध समुदाय पर प्रतिबंध और दंड लागू करने मेंसक्षम हो और सबसे बढ़कर समूह से अपरिवर्तनीय।

2. नेसफील्ड जाति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं - समुदाय का एक वर्ग, जो दूसरे वर्ग से संबंधों का बहिष्कार करता हो और अपने संप्रदाय को छोड़कर दूसरे के साथशादी-व्यवहार तथा खान-पान से परहेज करता हो।

3. सर एच. रिजले के अनुसार-जाति का अर्थ है, परिवारों का या परिवार समूहों का संगठन, जिसका साझा नाम हो, जो किसी खास पेशे से संबंद्ध हो, जो एक से पौराणिकपूर्वजों-पितरों के वंशज होने का दावा करता हो, एक जैसा व्यवसाय अपनाने पर बल देता हो और सजातीय समुदाय का हामी हो।

4. डा.केतकर ने जाति की परिभाषा इस प्रकार की है- दो लक्षणों वाला एक सामाजिक समूह, (क) उसकी सदस्यता उन लोगों तक सीमित होती है, जो जन्म से सदस्य होते हैं औरजिनमें इस प्रकार जन्म लेने वाले शामिल होते हैं; (ख) कठोर सामाजिक कानून द्वारा सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह करने के लिए वर्जित किए जाते हैं।

हमारे लिए इन परिभाषाओं की समीक्षा अत्यावश्यक है। यह स्पष्ट है कि अलग-अलग देखने पर तीन विद्वानों की परिभाषाओं में बहुत कुछ बाते हैं या बहुत कम तत्व हैं।अकेले देखने में कोई भी परिभाषा पूर्ण नहीं और मूल भाव किसी में भी नहीं है। उन सबने एक भूल की है कि उन्होंने जाति को एक स्वतंत्र तत्व माना है, उसे समग्रतंत्र के एक अंक के रूप में नहीं लिया है। फिर भी सारी परिभाषाएं एक-दूसरे की पूरक हैं, जो तथ्य एक विद्वान ने छोड़ दिया है, उसे दूसरे ने दर्शाया है। मैं केवलउन सूत्रों पर विचार रखूंगा और उनका मूल्यांकन करूंगा, जो उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार सभी जातियों में समान रूप से पाए जाते हैं, जो जाति की खासियत माने जातेहैं।

हम सेनार से शुरू करते हैं। वह अपमिश्रण की बात करते हैं और यह बताते हैं कि यह जाति की प्रकृति है। इसे देखते हुए यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि यह किसी जातिसे संबंधित नहीं है। यह आमतौर पर पूजा-समारोहों से संबंद्ध बात है और शुद्धता के सामान्य सिद्धांत का पोषक तत्व है। परिणामस्वरूप इसका संबंध जाति से नहीं है औरइसकी कार्यप्रणाली को ध्वस्त किए बिना, इसको प्रतिरुद्ध किया जा सकता है। अपमिश्रण का सिद्धांत जाति से जोड़ दिया गया है, क्योकि जो जाति सर्वोच्च कही जाती है, वह पुरोहित वर्ग है।

हम जानते हैं कि पुरोहित और पवित्रता का पुराना संबंध है। सार यही है कि अपमिश्रण का सिद्धांत तभी लागू होता है, जब किसी जाति का धार्मिक स्वभाव हो। श्रीनेसफील्ड अपने तरीके से कहते

हैं कि जाति की प्रकृति है कि उनके साथ खान-पान नहीं किया जाता, जो उनकी जाति के बाहर हैं। यह नया तथ्य है, फिर भी ऐसा लगता है किश्री नेसफील्ड इस व्यवस्था के प्रभाव से अपरिचित हैं। चूंकि जाति अपने में ही सीमित एक संस्था है, अतः वह सामाजिक अंतरंगता के विरुद्ध है, जिसमें खान-पान आदि परभी पाबंदी है। परिणाम यह निकलता है कि बाहरी लोगों से खान-पान पर पाबंदी सकारात्मक निषेध का कारण नहीं है, बल्कि जातिप्रथा परिणाम है अर्थात् भिन्नता कागुरुमंत्र है। इसमें कोई संदेह नहीं कि खान-पान पर प्रतिबंध भिन्नता के कारण नहीं है, बल्कि यह एक धार्मिक व्यवस्था है, परंतु यह तत्व बाद में जुड़ा है। सर एच.रिजले ने विशेष ध्यान देने योग्य कोई बात नहीं कही है।

अब हम डा. केतकर की परिभाषा का विश्लेषण करते हैं। उन्होंने इस विषय को और विशद् रूप दिया है। केवल यही बात नहीं है कि वह भारत के निवासी हैं, बल्कि उन्होंनेविवेचनात्मक और पैनी दृष्टि से निष्पक्ष राय दी है, जो जातिप्रथा के बारे में उनके अध्ययन के कारण हुआ है। उनकी परिभाषा विचारणीय है, क्योंकि उन्होंने जातितंत्रका विश्लेषण जातिप्रथा के आधार पर किया है और अपना ध्यान केवल उन्हीं लक्षणों तक केंद्रित रखा है, जो जातिप्रथा के अंतर्गत जाति के अस्तित्व में अनिवार्य है।उन्होंने फालतू बातों की ठीक अवहेलना की है, जो गौण और क्षणिक हैं। उनकी परिभाषा के बारे में कहा जा सकता है कि उनके विचरों में कहीं थोड़ी भ्रांति है, वैसेउनमें विशदता और स्पष्टता है। वह रोटी-बेटी के व्यवहार में भेदभाव की बात कहते हैं। मेरा कहना है कि मूल बात एक ही है, रोटी से भी परहेज है और बेटी व्यवहार सेभी, पर डा.केतकर ने बताया है कि ये हैं एक ही सिक्के के दो पहलू। यदि आप बेटी व्यवहार पर पाबंदी लगाते हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि आप परिधि संकुचित कर लेते हैं।इस प्रकार ये दोनों लक्षण एक ही पदक के मुख्य भाग तथा पृष्ठ भाग हैं।

जातितंत्र के इस समीक्षात्मक मूल्यांकन से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि सजातीय विवाह का निषेध या ऐसे विवाह का न पाया जाना ही जातिप्रथा का मूल है, परंतुअमूर्त नृविज्ञान के आधार पर कुछ ऐसे लोग इस बात को नकार सकते हैं, क्योंकि सजातीय विवाह के पक्षधर वर्ग जातीय समस्या बढ़ाए बिना ऐसा कर सकते हैं। सामान्यतः यहसंभव है, क्योंकि यह एक मूर्त सत्य है कि सजातीय विवाह समर्थक समाज सांस्कृतिक रूप से भिन्न रहकर अलग बस्तियों में बस सकता है, जहां एक-दूसरे से कोई मतलब न हो।इस बारे में एक युक्तिसंगत उदाहरण दिया जा सकता है कि अमरीकन भारतीयों के नाम से विख्यात नीग्रो समुदाय और गोरों के विभिन्न कबीले अमरीका में मौजूदा हैं, परंतुहमें इस संबंध में भ्रांति नहीं रहनी चाहिए कि भारत में स्थिति भिन्न है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत में सजातीय प्रथा है। भारत की विभिन्न प्रजातियांकुछ खास क्षेत्रों में निवास करती हैं और उनका आपस में मेल-जोल है तथा उनमें सांस्कृतिक एकता है, जो सजातीय समाज का एकमात्र मापदंड है। ऐसी सजातीयता को आधारमानने से जातिप्रथा एक नयी समस्या का रूप धारण करती है, जो केवल सजातीय विवाह समर्थक समाज या कबीलों से अलग स्थिति है। भारत में जातिप्रथा का अर्थ है समाज कोकृत्रिम हिस्सों में विभाजित करना, जो रीति-रिवाजों और शादी व्यवहार की भिन्नताओं से बंधे हों। परिणाम स्पष्ट है कि सजातीय विवाह एकमात्र लक्षण है, जो जातिप्रथाकी विशेषता है और यदि हम यह जताने में सफल हो जाएं कि सजातीय विवाह ही क्यों होते हैं तो हम व्यावहारिक रूप से यह साबित कर सकते हैा कि जातियों की उत्पत्ति कैसेहुई और इनका ताना-बाना क्या है?

अब आप भलीभांति समझ सकते हैं कि मैं सजातीय विवाह को जातिप्रथा की जड़ क्यों मानता हूं। मैं आपको पशोपेश में डालना नहीं चाहता। मैं इस पर प्रकाश डालता हूं।

यहां यह बताना असंगत न होगा कि आज दुनिया का कोई अन्य सभ्य देश ऐसा नहीं है, जो आदिम मान्यताओं से लिपटा हो। इस देश का धर्म आदिम है और इसके आदिम संकेत इसआधुनिक काल में भी पूरे जोर-शोर से इस पर हावी हैं। इस सिलसिले में मैं बहिर्गोत्र विवाह का उल्लेख करना चाहता हूं। आदिम युग में बहिर्गोत्र विवाहों का प्रचलनसर्वविदित है। युग परिवर्तन के साथ-साथ तो इस शब्द की सार्थकता ही जाती रही और रक्त के घनिष्टतम रिश्ते को छोड़कर इस संबंध में विवाहों पर कोई प्रतिबंध ही नहींरहा, लेकिन भारत में आज भी बहिर्गोत्र विवाह प्रथा ही प्रचलित है। भारतीय समाज में आज भी कबीला प्रथा मौजूद है, हालांकि कबीले नहीं रहे। विवाह पद्धति इसकाप्रमाण है, जो बहिर्गोत्र प्रथा पर आधारित है। यहां सपिंड विवाहों पर ही प्रतिबंध नहीं है, बल्कि सगोत्र विवाह भी अपवित्र माने जाते हैं।

इसलिए आपको सबसे महत्त्वपूर्ण बात याद रखनी है कि सजातीय प्रथा भारत के लिए विदेशी प्रथा है। भारत में विभिन्न गोत्र हैं और ये बहिर्गोत्र विवाह से संबंधित हैं।ऐसे ही अन्य वर्ग भी हैं, जो टोटम अर्थात् देवों को मानते हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत में बहिर्गोत्र विवाह एक विधान है और इसका उल्लंघन संभवनहीं, यहां तक कि जात भीतर विवाह प्रथा के बावजूद, गोत्र बाहर विवाह पद्धति का कठोरता से पालन किया जाता है। गोत्र वाहर विवाह करने की प्रथा का उल्लंघन करने परजात बाहर विवाह करने वालों की तुलना में कठोर दंड का विधान है। आप देख सकते हैं कि बहिर्गोत्र विवाह का नियम बना दिया जाए तो जातिप्रथा का आधार ही मिट जाए, क्योंकि बहिर्गोत्र का अर्थ परस्पर विलय है, परंतु हमारे यहां जातिप्रथा है। परिणाम यही निकता है कि जहां तक भारत का संबंध है, यहां बहिर्गोत्र विवाह विधान सेअंततः जाति अर्थात् सजातीय विवाह विधान भी जुड़ा है। बहरहाल, मूल रूप से बहिर्गोत्री समाज में सजातीय विवाह विधान का पालन सरलता से संभव है, जो जातिप्रथा का मूलहै और गंभीर समस्या है। इसी विधान के माध्यम से बहिर्गोत्र विवाहों के रहते सजातीय विवाह होता है। इसी पर विचार करके हमें अपनी समस्या का समाधान मिल सकता है।

इस प्रकार सजातीय विवाह प्रथा की बहिर्गोत्रीय विवाहों पर जकड़ ही जातिप्रथा का कारक है, लेकिन बात इतनी सरल नहीं। हम मान लेते हैं कि एक ऐसा समुदाय है, जो एकजाति बनाना चाहता है और विचार करता है कि सजातीय विवाह प्रथा के प्रचलन के लिए कौन सा माध्यम अपनाए। यदि कोई समुदाय सजातीय विवाह पद्धति को दरकिनार करकेअंतरजातीय विवाह निषेध का उल्लंघन करता है और अपने समुदाय के बाहर विवाह रचा लेता है, तो वह व्यर्थ है। विशेष रूप से इस परिप्रेक्ष्य में कि सजातीय विवाह प्रथाके पहले सभी विवाह बहिर्गोत्र होते थे। फिर सभी वर्गों में यह प्रकृति है कि वे सम्मिश्रण के पक्षधर हैं और वे एक सजातीय वर्ग में संगठित हो जाते हैं। यदि इसप्रकृति का प्रतिकार किया जाए तो यह आवश्यक है कि जिन वर्गों के बीच विवाह संबंध नहीं हैं, उन्हें भी प्रतिबंधित वर्ग में सम्मिलित किया जाए। इसके लिए आवश्यकहै, परिधि का बढ़ाया जाना।

इसके बावजूद बाहरी समुदाय में शादी-व्यवहार को रोक देने से आंतरिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जिनका समाधान सरल नहीं हैं। मोटे तौर पर सभी वर्गों मेंस्त्री-पुरुष संख्या समान होती है और समान वय के स्त्री-पुरुष में बराबरी भी होती हैं, किंतु समाज उन्हें बराबर नहीं मानता। साथ ही जो समुदाय जाति-संरचना करताहै, उसमें स्त्री-पुरुष समानता परम लक्ष्य होता है। इसके बिना सजातीय विवाह प्रथा सफल नहीं हो सकती। इसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि सजातीयविवाह प्रथा को बनाए रखना है, तो आंतरिक दृष्टि से दांपत्य अधिकारों का विधान रखना होगा, अन्यथा समाज के लोग दायरे से बाहर हो जाएंगे। यदि आंतरिक दृष्टि सेदांपत्य अधिकार दिए जाते हैं तो जाति-संरचना की सफलता के लिए स्त्री-पुरुष संख्या समान रखनी आवश्यक होगी। दोनों के बीच भारी संख्या विषमता होने से सजातीय विवाहप्रथा चरमरा उठेगी।

जातियों की समस्या के समाधान के लिए विवाह योग्य स्त्री-पुरुष की असमानता को रोकना होगा। प्रकृति इसमें सहायक तभी हो सकती है, जब पति के साथ पत्नी या पत्नी केसाथ पति की मृत्यु हो जाए। इससे ही संतुलन बना रह सकता है। ऐसा असंभव है। वास्तव में, पति के मरने पर पत्नी बच जाती है और पत्नी के मरने पर पति बचा रह जाता है।इस प्रकार इन बचे रहे स्त्री-पुरुषों की व्यवस्था करनी होगी, अन्यथा ऐसा हो सकता है कि कोई बचा हुआ पुरुष या स्त्री-जाति के बाहर विवाह करके जाति-व्यवस्था केजाल को छिन्न-भिन्न कर दे। यदि उन्हें स्वतंत्र रहने दिया गया और उन्हें नव-युगल बनाने का कोई नियम नहीं बनता है तो इस प्रकार के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष बचेरहेंगे। ऐसे यह बहुत संभव है कि वे सीमाएं लांघ जाएं तथा बाहर विवाह रचा लें और जाति में विजातीय लोगों को भर लें।

अब हम यह देखें कि जिस वर्ग की हमने ऊपर कल्पना की है, वह इन बचे हुए स्त्री-पुरुष का क्या करेगा। पहले हम विधवा स्त्रियों को लेते हैं। उनका दो तरह से इंतजामकिया जा सकता है, जिससे कि सजातीय विवाह प्रथा बनी रहे।

पहलाः उसे उसके मृत पति के साथ जला दिया जाए और उससे मुक्ति पा ली जाए। स्त्री-पुरुष अंतर को घटाने के लिए यह एक अव्यावहारिक तरीका है। कुछ मामलों में यह संभवहै, कुछ में नहीं। नतीजा यह निकला कि प्रत्येक स्त्री को ठिकाने नहीं लगाया जा सकता। वैसे यह एक आसान तरीका है, लेकिन बहुत कटु स्थिति है। इस तरह विधवाएं यदिठिकाने नहीं लगाई जा सकें और वे जाति में ही बनी रहें, तो दुहरा खतरा पैदा हो जाता है। वह जात बाहर विवाह कर लेगी और सजातिवाद को तिलांजलि दे देगी यामुकाबलेबाजी में अपनी जाति की उन स्त्रियों का हक मार लेगी, जो विवाह योग्य हैं। इस तरह यह खतरा है। यदि वह उसके पति के साथ जलाई न जा सके तो उसका कुछ इंतजामकरना होगा।

दूसरा निराकरण है कि उन्हें हमेशा के लिए विधवा रहने दिया जाए। जहां तक वांछित परिणाम का संबंध हैं, उसे जला देना सदा विधवा बनाए रखने से बेहतर है। जला देने सेतीनों आशंकाएं, जिनका विधवा को सामना करना पड़ता है, नष्ट हो जाती हैं। मरने से वह कोई समस्या नहीं रहेंगी और वह न जाति बाहर और नही जाति में पुनर्विवाह करेगी, परंतु उसे विधवा रूप में जीवित रहने देना, जलाने से अच्छा और व्यावहारिक भी है। जहां यह अपेक्षाकृत मानवीय प्रथा है, इससे पुनर्विवाह की आशंका भी टलती है, परंतु इससे उस वर्ग की नैतिकता स्थापित नहीं रह सकती। इसमें कोई संदेह नहीं कि

अनिवार्य वैधव्य में स्त्री बच जाती है, परंतु पूरे जीवन उसे किसी की वैध पत्नीबनने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। इससे अनैतिकता के लिए रास्ते खुलते हैं, लेकिन यह कोई दुःसाध्य कार्य नहीं है। उसे इस हालत में लाया जा सकता है किउसमें आकर्षण लेशमात्र भी न बचे।

जाति-संरचना करने वाले समुदाय में बचे पुरुषों (विधुरों) की समस्या अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह विधवाओं की अपेक्षाअधिक विकराल है। इतिहास के आरंभ से ही पुरुष कास्त्री की अपेक्षा अधिक महत्त्व रहा है। इसका प्रभुत्व हर समाज में रहा है। इसकी प्रतिष्ठा अधिक रही है। पुरुष की परंपरागत श्रेष्ठता के कारण उसकी इच्छाओं कासदा सम्मान किया जाता रहा है। दूसरी आरे नारी सदा धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक असमानताओं का शिकार होती रही है। इस हालत में विधवाओं के साथ वैसा ही बर्ताव नहींकिया गया है, जैसा बचे हुए पुरुषों (विधुर) के साथ किया गया है।

उसे उनकी मृत पत्नी के साथ जला डालना दो कारणों से खतरनाक है। पहली बात तो यह है कि ऐसा किया नहीं जा सकता, क्योंकि वह पुरुष है। दूसरे यदि ऐसा किया जाए तो एकतगड़ा व्यक्ति जाति की खातिर लुप्त हो जाएगा। अब उसने आसानी से निबटने के लिए दो विकल्प रह जाते हैं। मैं इन्हें आसान विकल्प इसलिए कह सकता हूं, क्योंकि वह समाजके लिए उपयोगी हैं।

वह समाज के लिए कितना ही महत्त्वपूर्ण हो, सजातीय विवाह इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसलिए समाधान ऐसा होना चाहिए, जो इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति करे। ऐसीपरिस्थितियों में उसे भी विधवा की तरह आजीवन विधुर रहने के लिए बाध्य या मेरे विचार में ऐसा करने के लिए राजी किया जा सकता है। यह समाधान बिल्कुल मुश्किल नहींहै, क्योंकि कुछ बिना विवश किए भी आत्म-संयम बरत सकते हैं या वे इससे भी चार कदम आगे बढ़कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकते हैं, लेकिन मानव प्रकृति को देखते हुएऐसी अपेक्षा आसानी से पूर्ण नहीं हो सकेगी। दूसरी स्थिति में संभव है कि ऐसा व्यक्ति समूह की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने पर उसके नैतिक सिद्धांतों केलिए खतरा बन सकता है।

दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर यद्यपि ब्रह्मचर्य व्रत उन मामलों में आसान है, जहां इसे सफलता से अपनाया जाता है, लेकिन फिर भी जाति की भौतिक सुख-समृद्धि के लिएलाभदायक नहीं है। यदि वह सही अर्थों में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है और सांसरिक सुखों का त्याग कर देता है, तो वह जाति के नैतिक मूल्यों या सजातीय विवाह केलिए खतरा नहीं होगा, जैसा कि उसके सांसारिक जीवन बिताने पर होता। जहां तक भौतिक सुख-समृद्धि का प्रश्न है, ब्रह्मचारी की तरह जीवनयापन करने वाला व्यक्ति जला दिएगए व्यक्ति के समान है। प्रभावी सौहार्दपूर्ण जीवन सुनिश्चित करने के लिए सदस्यों की निर्धारित संख्या होनी चाहिए।

विधुरों पर ब्रह्मचर्य थोपना सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों दृष्टियों से विफल रहा है। यह जाति के हित में है कि गृहस्थ रहे। समस्या केवल यह है कि उसे जातिमें से ही पत्नी सुलभ कराई जाए। शुरू में इसमें कठिनाई होती है, क्योंकि जातियों में स्त्री और पुरुष का अनुपात एक-एक का है। इस तरह किसी के दोबारा विवाह कीगुंजाइश नहीं होती, क्योंकि जब जातियों की परिधियां बनी होती हैं तो

विवाह योग्य पुरुषों और स्त्रियों की संख्या पूरी तरह संतुलित होती है। इन परिस्थितियों मेंविधुर को जाति में रखने के लिए उसका पुनर्विवाह उन बालिकाओं से किया जा सकता है, जो अभी विवाह योग्य न हों। विधुरों के लिए यह यथा संभव उपाय है। इस प्रकार वहजाति में बना रहेगा। इस प्रकार उनके जाति से बाहर निकलने और उनकी संख्या में कमी को रोका जा सकेगा और सजातीय विवाह वाले समाज में नैतिकता भी बनी रहेगी।

यह स्पष्ट है कि ऐसे चार तरीके हैं, जिन्हें अपनाने से स्त्री-पुरुषों में संख्या का अनुपात बनाए रखा जा सकता है - (1) स्त्री को उसके मृत पति के साथ सती करदिया जाए, (2) उसे आजीवन विधवा रखा जाए, जो जलाने से कुछ कम पीड़ादायक है, (3) विधुरों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने को बाध्य किया जाए, और (4) विधुर का ऐसीलड़की से विवाह कर दिया जाए, जिसकी आयु अभी विवाह योग्य न हों। हालांकि मेरे उपरोक्त विचार के अनुसार विधवा को जलाना और विधुर पर ब्रह्मचर्य व्रत थोपना सजातीयविवाह को बनाए रखने क लिए समूह के प्रयत्नों के प्रति संदेहास्पद सेवा होगी, लेकिन जब साधनों को शक्ति के रूप में स्वतंत्र किया जाता है अथवा उन्हें गतिमान करदिया जाता है, तो वे लक्ष्य बनते हैं। तब फिर वे साधन कौन सा लक्ष्य प्राप्त करते हैं। वे सजातीय विवाह की व्यवस्था को जारी रखते हैं, जबकि विभिन्न परिभाषाओं केहमारे विश्लेषण के अनुसार सजातीय विवाह और जाति एक ही बात है। अतः इन साधनों का अस्तित्व और जाति समरूप हैं तथा जाति में इन साधनों का समावेश है।

मेरे विचार में जाति-व्यवस्था में यह जाति की सामान्य क्रियाविधि है। अब हम अपना ध्यान इन उच्च सिद्धांतों से हटाकर हिंदू समाज में विद्यमान जातिप्रथा और उसकीक्रियाविधि की जांच में लगाएं। मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि अतीत के रहस्यों को खोलने वालों के मार्ग में अनेक कठिनाइयां आती हैं और निःसंदेह भारत मेंजाति-व्यवस्था अति प्राचीन संस्था है। इन हालात में यह और भी ज्वलंत यथार्थ है कि जहां तक हिन्दुओं का संबंध है, उनके बारे में कोई आधिकारिक या लिखित संकेत नहींहैं तथा भारतीयों का दृष्टिकोण ऐसा बन गया है कि वह इतिहास लेखन को मूर्खता मानते हैं, क्योंकि उनके लिए जगत मिथ्या है, लेकिन ये संस्थाएं जीवित रहती हैं, यद्यपि चिरकाल तक इनका लिखित प्रमाण नहीं रहता और उनके रीति-रिवाज व नैतिक मूलय अवशेषों की भांति अपने आप में एक इतिहास हैं। हम अपने कर्तव्य में सफल होंगे, यदिहम अतिरेक पुरुष और अतिरेक स्त्री से संबंधित समस्याओं का हिन्दुओं द्वारा जो निदान किया गया है, उसकी जांच करें।

सतही तौर पर देखने वाले व्यक्ति को हिंदू समाज की सामान्य क्रियाविधि जटिल लगे, किंतु वह स्त्रियों से संबंधित तीन असाधारण रीतियां प्रस्तुत करती हैं, ये हैं -

1. सती या विधवा को उसके मृत पति के साथ जलाना।

2. थोपा गया आजीवन वैधव्य ,जिसके अंतर्गत एक विधवा को पुनःविवाह करने की आज्ञा नहीं हैं।

3. बालिका विवाह।

संन्यास के बाद भी विधु में विकट लिप्सा होती हैं, परंतु कुछ मामलों में यह शुद्ध मानसिक कारणों से ही संभव है।

जहां तक मैं समझता हूं, आज तक इन प्रथाओं के उद्भव की कोई वैज्ञानिक व्याख्या सामने नहीं आई है। अनेक दार्शनिक सिद्धांत इन प्रथाओं की प्रतिष्ठा में प्रतिपादितकिए गए हैं, परंतु कहीं से इनके उद्भव और अस्तित्व का संकेत नहीं मिलता। सती सम्माननीय है (ए.के. कुमार स्वामीः सतीः ए डिफेंस ऑफ द ईस्टर्न वीमेन इन दसोशियोलोजिकल रिव्यू, वोल्यूम, 6,1913) क्योंकि यह पति-पत्नी के बीच शरीर और आत्मा की संपूर्ण एकात्मकता और श्मशान से परे तक समर्पण को दर्शाती है, क्योंकिइसमें पत्नीत्व को साकार रूप दिया गया है, जैसा कि उमा ने अच्छी तरह उस समय स्पष्ट किया है, जब उन्होंने कहा था," हे महेश्वर, अपने पतिदेव के लिए नारी कासमर्पण ही उसका सम्मान है, यही उसका शाश्वत स्वर्ग है।" भावुकता में वह आगे कहती हैं," मेरी धारणा है कि यदि आप मुझसे संतुष्ट नहीं हैं तो मेरे लिए स्वर्ग कीकामना करना बेकार हैं।" आजीवन वैधव्य क्यों सम्माननीय है, मैं नहीं जानता, न ही मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिला है, जो इसकी प्रशंसा करता हो, हालांकि पालन करने वालेअनेकानेक हैं। बालिका विवाह की प्रशंसा में डा.केतकर कहते हैं, "एक सच्चे आस्थावान स्त्री अथवा पुरुष को विवाह सूत्र में बंधने के बाद अन्य पुरुष-स्त्री सेलगाव नहीं करना चाहिए, इस प्रकार की पवित्रता न केवल विवाह के उपरोंत, बल्कि विवाह पूर्व भी आवश्यक है, क्योंकि चारित्र्य का केवल यही सही आदर्श है। किसीअपरिणता को पवित्र नहीं माना जा सकता, यदि वह उस व्यक्ति के अलावा जिससे उसका विवाह होने वाला है, किसी अन्य व्यक्ति से प्रणय करती है। यदि वह ऐसा करती है तो यहपाप है। इसलिए एक लड़की के लिए यह अच्छा होगा कि कामवासना जाग्रत होने से पूर्व उसे यह पता होना चाहिए कि उसे किससे प्रेम करना है।"(हिस्ट्री आफ कास्ट इनइंडिया, 1909, पृ. 2-33) तब उसका विवाह किया जाए।

ऐसी हवाई और कुतर्क की बातें यह तो प्रमाणित करती हैं कि ऐसी प्रथाओं को क्यों सम्मानित किया गया, परंतु हमें यह नहीं बतातीं कि ये रिवाज कैसे पड़े। मेरा यहमानना है कि इनको सम्मान देने का कारण ही यह है कि इन्हें अपनाया गया। जिस किसी को भी 18वीं शताब्दी के व्यक्तिवाद का थोड़ा-सा भी ज्ञान होगा, वह मेरे कथन का सारसमझ जाएगा। सदा से यह प्रथा रही है कि आंदोलनों का सर्वोपरि महत्त्व होता है। बाद में उन्हें न्याय-संगत बनाने के लिए और उन्हें नैतिक बल देने के लिए उन्हेंदार्शनिक सिद्धांतों का संबल दे दिया जाता है। इसी तरह मैं निवेदन करता हूं कि इसी कारण इन रिवाजों की प्रशंसा की गई, क्योंकि इनके चलन को प्रोत्साहन देने केलिए प्रशंसा की जरूरत थी। प्रश्न यह है कि ये कैसे बढ़े? मेरा विचार है कि जाति-संरचना में इनकी आवश्यकता थी और उनको लोकप्रिय बनाने के लिए सिद्धांतों की बैसाखीपकड़ा दी गई। हम जानते हैं कि ये रिवाज कितने क्रूर, कष्टकारी और घातक हैं। रिवाज साधन मात्र हैं, जबकि उन्हें आदर्श घोषित किया गया, परंतु यह हमें परिणामों केबारे में भ्रमित नहीं कर सकते। सरलता से कहा जा सकता है कि साधनों को आदर्श बना देना आवश्यक होता है और इस मामले में तो खासतौर से उन्हें भारी प्रेरणा देकरउत्साहित किया जाता है। साधन को साध्य मान लेने में कोई हर्ज नहीं है, किंतु हम अपने साधन की प्रकृति नहीं बदल सकते। आप कानून बना सकते हैं कि सभीबिल्लियां-कुत्ते हैं, जैसे अप किसी साधन को उद्देश्य मान सकते हैं, परंतु आप साधन की प्रकृति में परिवर्तन नहीं कर सकते। अतः आप बिल्लियों को कुत्ते नहीं बनासकते। ठीक ऐसे ही साधन को साध्य

मान सकते हैं। इसी कारण मेरा यह कहना ठीक है कि साधन और साध्य को एकाकर कर दियाजाए, परंतु यह कैसे उचित ठहराया जा सकता है किजातिप्रथा और सजातीय विवाह प्रथा के लिए सतीप्रथा, आजीवन विधवा अवस्था और बालिका विवाह, विधवा स्त्री, और विधुर पुरुष की समस्या के समाधान हैं। सजातीयविवाह-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए ये रिवाज आवश्यक हैं, जबकि सजातीय विवाह प्रथा के अभाव में जातिप्रथा का अस्तित्व बने रहना संदेहास्पद हैं।

भारत में जातिप्रथा के प्रचलन और संरक्षण की क्रियाविधि पर विचार करते हुए अगला प्रश्न यह है कि इसकी उत्पत्ति कहां से हुई। इसके मूल का प्रश्न एक कड़वा प्रश्नहै और जातपांत के अध्ययन में इसी दुखद अवहेलना की गई है। कुछ ने इसका समर्थन किया है और कुछ ने इस प्रयत्न पर जानबूझकर पर्दा डाल दिया है। कुछ लोग समझ पाने मेंसफल रहे हैं कि जात-पांत का मूल कहां हो सकता है। वे कहते हैं, "यदि हम मूल के प्रति अपनी स्नेह भावना पर नियंत्रण नहीं कर सकते तो हमें उसके बहुवचन रूपअर्थात् 'जात-पांत के मूल' का प्रयोग करना चाहिए।" वैसे भारत में जात-पांत के मूल के बारे में कोई उलझन पेश नहीं हुई है, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं किसजातीय विवाह ही जातपांत का एकमात्र कारण है और जब में जाति के मूल की बात कहता हूं तो इसका अर्थ सजातीय विवाह प्रथा की क्रियाविधि के मूल से हैं।

किसी समाज में व्यक्तियों की अतिसूक्ष्म अवधारणा को इतने शक्तिशाली ढंग से प्रचारित करना-मैं गंदगी उछालना कहने जा रहा था। यह राजनीतिक भाषा में कोरी बकवास है।यह बात नगण्य है कि व्यक्ति मिलकर समाज बनाते हैं। समाज सर्वथा वर्गों से मिलकर बनता है; इसमें वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर बल देना अतिश्योक्ति हो सकती है, परंतु यह सच है कि समाज में कुछ निश्चित वर्ग होते हैं। आधार भिन्न हो सकते हैं। वे वर्ग आर्थिक, आध्यात्मिक या सामाजिक हो सकते हैं, लेकिन समाज का प्रत्येकव्यक्ति किसी न किसी वर्ग से संबंद्ध होता है। यह एक शाश्वत सत्य है और आरंभिक हिंदू समाज भी इसका अपवाद नहीं रहा होगा। जहां तक हम जानते हैं, वह अपवाद नहीं था।यदि हम इस सामान्य नियम को ध्यान में रखते तो पाते हैं कि जातपांत की उत्पति के अध्ययन में यह बहुत उपयोगी तत्व साबित हो सकता है, क्योंकि हम यह निश्चित करनाचाहते हैं कि वह कौन सा वर्ग था, जिसने सबसे पहले अपनी जाति की संरचना की। इसीलिए वर्ग और जाति एक-दूसरे के दो रूप है। फर्क सिर्फ यह है कि जाति अपने को सजातीयपरिधि में रचने वाला वर्ग है।

जातिप्रथा के मूल का अध्ययन हमारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता है कि वह कौन-सा वर्ग है, जिसने इस परिधि का सूत्रपात किया, जो इसका चक्रव्यूह है? यह प्रश्न बहुतकौतूहलजनक है, परंतु यह बहुत प्रासंगिक है और इसका उत्तर उस रहस्य पर से पर्दा हटाएगा कि पूरे भारत में जातिप्रथा कैसे पनपी और दृढ़ होती गई। दुर्भाग्य से इसप्रश्न का सीधा उत्तर मेरे पास नहीं हैं। मैं इसका परोक्ष उत्तर ही दे सकता हूं। मैंने अभी कहा है कि विचाराधीन रीति-रिवाज हिंदू समाज में प्रवाहित हैं। तथ्योंको यथार्थ बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि कथन को स्पष्ट किया जाए, ताकि इसकी व्यापकता पर प्रकाश डाला जा सके। यह प्रथा अपनी पूरी दृढ़ता के साथ केवल एक जातिअर्थात ब्राह्मणों में प्रचलित है, जो हिंदू समाज

की संरचना में सर्वोच्च स्थान पर है और गैर-ब्राह्मण जातियों ने इसका केवल अनुसरण किया, जहां इसके पालन में नतो उतनी दृढ़ता है और न संपूर्णता।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सम्मुख महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत कर सकता है। यदि गैर-ब्राह्मण जातियां इस प्रथा का अनुसरण करती हैं, जैसा कि आसानी से देखा जासकता है, तो यह प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि कौन-सा वर्ग जाति-व्यवस्था का जन्मदाता है। ब्राह्मणों ने क्या अपने लिए एक परिधि बनाई और जाति कीसंरचना कर ली, यह एक अलग प्रश्न है, जिस पर किसी अन्य अवसर पर विचार किया जाएगा, परंतु इस रीति-नीति पर कड़ाई से पालन और इस पुरोहित वर्ग द्वारा प्राचीन-काल सेइस प्रथा का कड़ाई से अमल, यह प्रमाणित करता है कि वही वर्ग इस अप्राकृतिक संस्था का जन्मदाता था। उसने अप्राकृतिक साधनों से इसकी नींव डाली और इसे जिंदा रखा।

अब मैं अपने लेखन के तीसरे भाग पर आता हूं, जिसका संबंध पूरे भारत में जातपांत के उद्भव और विस्तार से है। जिस प्रश्न का मुझे उत्तर देना है, वह यह कि देश केअन्य गैर-ब्राह्मण समुदायों में यह प्रथा कैसे फैली? इसके उत्तर में मेरा विचार है कि पूरे भारत में जातिप्रथा के प्रचलन से ज्यादा पीड़ादायक इसके उद्भव काप्रश्न है। जैसा कि मैं समझता हूं, इसका मुख्य कारण यह है कि इसका विस्तार और सूत्रपात दो अलग-अलग बातें नहीं हैं। विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि जातिप्रथा यातो भोले-भाले समाज पर कानून गढ़ने वालों ने नैतिकता का मुलम्मा चढ़ाकर थोप दी या फिर सामाजिक विकास की भक्त भारतीय जनता में किसी नियम के अधीन पनपती रही।

पहले मैं भारत के विधि-निर्माता के बारे में बताना चाहूंगा। हर देश में उसके विधि-निर्माता होते हैं, जो अवतार कहलाते हैं, ताकि आपातकाल में पापी समाज को सहीदिशा दी जा सके। यही विधि-निर्माता कानून और नैतिकता की प्रतिस्थापना करते हैं। भारत में विधि-निर्माता के रूप में यदि मनु का कोई अस्तित्व रहा है, तो वह एक ढीठव्यक्ति रहा होगा। यदि यह बात सत्य है कि उसने स्मृति अथवा विध की रचना की तो मैं कहता हूं कि वह दुःसाहसी व्यक्ति था और जिस मानवता ने उसके विधान को शिरोधार्थकिया, वह वर्तमान-काल की मानवता से भिन्न थी। यह अकल्पनीय है कि जाति-विधान की संरचना की गई। यह कहना कोई अतिश्योक्ति न होगी कि मनु ने ऐसा कोई विधान नहीं बनायाकि एक वर्ण को इतना रसातल में पहुंचा दिया कि उसे पशुवत बना दिया और उसको प्रताड़ित करने के लिए एक शिखर वर्ण गढ़ दिया। यदि वह क्रूर न होता, जिसने सारी प्रजा कोदास बना डाला, तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह अपना आधिपत्य जमाने के लिए इतने अन्यायपूर्ण विधान की संरचना करता, जो उसकी 'व्यवस्था' में साफ झलकता है।

मैं मनु के विषय में कठोर लगता हूं, परंतु यह निश्चित है कि मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसका भूत उतार सकूं। वह एक शैतान की तरह जिंदा है, किंतु मैं नहींसमझता कि वह सदा जिंदा रह सकेगा। एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनुसे पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, इसलिए उसने उसे एक दर्शन का रूप दिया, परंतु निश्चित रूप से हिंदू समाज का वर्तमान रूप जारी नहीं रह सकता। प्रचलितजातिप्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया और जाति-धर्म का प्रचार किया। जातिप्रथा का

विस्तार और उसकी दृढ़ता इतनी विराट है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तताऔर बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्धांत है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की। मैंने मनु के विषय में जो कहा है, मैं इससे अधिक और नहीं कहना चाहता, सिवाय यह कहने के कि वैचारिक दृष्टि से यह गलत और इरादतन दुर्भावनापूर्ण है। ब्राह्मण और कई बातों के लिए दोषी हो सकते हैं, और मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि वेहैं भी, परंतु गैर-ब्राह्मण अन्य जन -समुदायों पर जातिप्रथा थोपना उनके बूते के बाहर की बात थी। अपने इस तरह के दर्शन द्वारा, हो सकता है उन्होंने अपने ही तरीकेसे इस प्रक्रिया को पनपने में सहायता की हो, परंतु अपनी क्षमता से वे अपनी योजना कार्यान्वित नहीं करा सकते थे। चाहे कोई कितना भी गौरवशाली हो! चाहे कोई कितनाही कठोर क्यों न हों! अपने ढंग से समाज को चलाने में वह प्रशंसित तो हो सकता है, किंतु यह सिलसिला ज्यादा दिन नहीं चलता। मेरी आलोचना की तीव्रता अनावश्यक लगसकती है, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यह असत्य नहीं है। पुरातन पंथी हिन्दुओं के मन में दृढ़ धारणा है कि हिंदू समाज किसी तरह जातिप्रथा की प्रणाली में ढलगया और यह संस्था शास्त्रों ने बनाई है। यह विश्वास केवल विद्यमान ही नहीं है, बल्कि उसे इस आधार पर न्यायसंगत भी ठहराया जाता है। यह स्थिति सुखद हो सकती है, क्योंकि यह शास्त्रों से जन्मी है और शास्त्र गलत नहीं हो सकते। मैंने इस प्रकृति की विसंगतियों की ओर इस आधार पर ही ध्यान नहीं दिलाया है कि वैज्ञानिकता के नामपर धार्मिक सामान्यताएं थोप दी गईं, न ही मैं उन सुधारकों का पक्षधर हूं, जो इसके विरुद्ध है। यह प्रथा उपदेशों से बड़ी है और न ही उपदेश इसे उखाड़ सकते हैं। मैंइस प्रकृति की निस्सारता बताना चाहता हूं, जिसने धार्मिक प्रतिबंधों को वैज्ञानिक कहकर ओढ़ रखा हैं।

इस तरह व्यक्ति-पूजा का सिद्धांत भारत में जातिप्रथा के प्रचलन के निराकरण में बहुत लाभदायक साबित नहीं होता। पश्चिमी विद्वानों ने संभवतः व्यक्ति पूजा को विशेषमहत्त्व नहीं दिया, लेकिन उन्होंने दूसरी व्याख्याओं को आधार बना लिया। उनके अनुसार भारत में जिन मान्यताओं ने जातिप्रथा को जन्म दिया है, वे हैं (1) व्यवसाय, (2) विभिन्न कबायली संगठनों का प्रचलन, (3) नयी धारणाओं का जन्म, (4) संकर जातियां

प्रश्न यह उठता है कि क्या वे मान्यताएं अन्य समाजों में मौजूद नहीं हैं और क्या भारत में ही उनका विशिष्ट रूप विद्यमान है। यदि वे भारत की विशेषताएं नहीं हैंऔर पूरे विश्व में एक समान हैं, तो उन्होंने भूमंडल के किसी अन्य भाग में जातियां क्यों नहीं गढ़ लीं? क्या इसका कारण यह है कि वे देश वेदों की भूमि की अपेक्षाअधिक पवित्र हैं या विद्वान गलती पर हैं? मैं सोचता हूं कि बाद की बात सही है।

अनेक लेखकों ने किसी न किसी मान्यता के आधार पर अपनी-अपनी विचारधारा के समर्थन में उच्च सैद्धांतिक मूल्यों के दावे किए हैं। कोई विवशता प्रकट करते हुए कहता हैकि गहराई से देखने पर प्रकट होता है कि ये सिद्धांत उदाहरणों के सिवाय कुछ भी नहीं हैं। मैथ्यू आर्नोल्ड का कहना है कि इसमें "महानता का कुछ सार न होते हुए भीमहान नाम जुड़े हुए हैं।" सर डेनजिल इब्बतसन, नेसफील्ड, सेनार और सर एच.रिजले के सिद्धांत यही हैं। मोटे तौर पर इनकी आलोचना में यह कहा जा सकता है कि यह लीकपीटने का प्रयत्न है। नेसफील्ड उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, "सिर्फ कार्य, केवल कार्य ही वह आधार

था, जिस पर भारत की जातियों की पूर्ण प्रथा का निर्माण हुआ।" लेकिन उन्हें यह बताना होगा कि वह इस कथन से हमारी जानकारी में कोई इजापुा नहं करते, जिसका सार यही है कि भारत में जातियों का आधार व्यवसाय मात्र है और यह स्वयंमें एक लचर दलील है। हमें नेसफील्ड महोदय से इस सवाल का जवाब चाहिए कि यह कैसे हुआ कि विभिन्न व्यवसायी वर्ग विभिन्न जातियां बन गए? मैं अन्य नृजाति-विज्ञानियोंके सिद्धांतों पर विचार करने के लिए सहर्ष प्रसन्न होता, यदि यह सही न होता कि नेसफील्ड का सिद्धांत एक अजीब सिद्धांत है।

मैं इन सिद्धांतों की आलोचना जारी रखते हुए इस विषय पर अपनी बात रखना चाहूंगा कि जिन सिद्धांतों ने जातिप्रथा को विभाजनकारी नियमों के पालन की एक स्वाभाविकप्रवृत्ति बताया है, जैसा कि हर्बर्ट स्पेंसर ने अपने विकास के सिद्धांत में व्याख्या की है और इसे स्वाभाविक बताया है तथा इसे 'जैविक संरचना भेद' कहकर लचरपुरातनपंथी शब्द जाल की धारणाओं को पुष्ट किया है या सुजनन-विज्ञान के प्रयत्नों का समर्थन किया है, जिससे उसकी सनक का आभास होता है कि जातिप्रथा अवश्यंभावी हैया विधि-सम्मत है, यह जानकर निरीह वर्गों पर सजग होकर इन नियमों को आरोपित किया गया है।

यह उचित ही रहेगा कि शुरू में मैं यह बात कहूं कि अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था, ये हैं : (1) ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग, (2) क्षत्रिय या सैनिक वर्ग, (3) वैश्य अथवा व्यापारिक वर्ग, (4) शूद्र अथवा शिल्पकार और श्रमिक वर्ग। इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि आरंभ में यह अनिवार्य रूपसे वर्ग विभाजन के अंतर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसीलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी। हिंदूइतिहास में किसी समय पुरोहित वर्ग ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और इस तरह स्वयं सीमित प्रथा से जातियों का सूत्रपात हुआ। दूसरे वर्ण भी समाज विभाजन केसिद्धांतानुसार अलग-अलग खेमों में बंट गए। कुछ का संख्या बल अधिक था तथा कुछ का नगण्य। वैश्य और शूद्र वर्ण मौलिक रूप से वे तत्व हैं, जिनकी जातियों की अनगिनतशाखा, प्रशाखाएं कालांतर में उभरी हैं, क्योंकि सैनिक व्यवसाय के लोग असंख्य समुदायों में सरलता से विभाजित नहीं हो सकते, इसलिए यह वर्ण सैनिकों और शासकों केलिए सुरक्षित हो गया।

समाज का यह उप-वर्गीकरण स्वाभाविक है, किंतु उपरोक्त विभाजन में अप्राकृतिक तत्व यह है कि इससे वर्णों में परिवर्तनशीलता के मार्ग अवरुद्ध हो गए और वे संकुचितबनते चले गए, जिन्होंने जातियों का रूप ले लिया। प्रश्न यह उठता है कि क्या उन्हें अपने दायरे में रहने के लिए विवश किया गया और उन्होंने सजातीय विवाह का नियमअपना लिया या उन्होंने स्वेच्छा से ऐसा किया। मेरा कहना है कि इसका द्विपक्षीय उत्तर है- कुछ ने द्वार बंद कर लिए और कुछ ने दूसरे के द्वार अपने लिए बंद पाए।पहला पक्ष मनोवैज्ञानिक है और दूसरा चालाकी भरा, परंतु ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं और जाति-संरचना की संपूर्ण रीति-नीति में दोनों की व्याख्या जरूरी है।

मैं पहले मनोवैज्ञानिक व्याख्या से शुरू करता हूं। इस संबंध में हमें इस प्रश्न का उत्तर खोजना है कि औद्योगिक, धार्मिक या अन्य कारणों से वर्ग अथवा जातियों नेअपने आपको आत्म-केंद्रित या सजातीय विवाह की प्रथा में क्यों बांध लिया? मेरा कहना है कि ब्राह्मणों के करने के कारण ऐसा हुआ।

सजातीय विवाह या आत्म-केंद्रितरहना ही हिंदू समाज का चलन था और क्योंकि इसकी शुरुआत ब्राह्मणो ने की थी, इसलिए गैर-ब्राह्मण वर्गों अथवा जातियों ने भी बढ़-चढ़कर इसकी नकल की और वे सजातीय विवाहप्रथा को अपनाने लगे। यहां यह खरबूजे को देखकर खरबूजे के रंग बदलने वाली कहावत चरितार्थ होती है। इसने सभी उप-विभाजनों को प्रभावित किया। इस तरह जातिप्रथा कामार्ग प्रशस्त हुआ। मनुष्य में नकलबाजी की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। इस कारण भारत में जातिप्रथा के जन्म की यह व्याख्या पर्याप्त हैं। इसकी जड़ें इतनी गहरी हैंकि बाल्टर बागेहोट को कहना पड़ा, "हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि यह नकलबाजी स्वैच्छिक होती है या इसके पीछे कोई भावना काम कर रही होती है। इसके विपरीत, इसका जन्ममानव के अवचेतन मन में होता है और पूर्ण चेतना जागने पर उसके प्रभावों का आभास होता है। इस तरह इसके तत्काल उदय का प्रश्न नहीं है, बल्कि बाद में भी इसका अहसासनहीं होता है। दरअसल, हमारी नकल करने की प्रवृत्ति का स्रोत विश्वास होता है और ऐसे कारण हैं, जो पूर्वकालीन रूप से हमें यह विश्वास कराते हैं तथा हमें विश्वासकरने से विरक्त करते हैं - यह हमारी प्रकृति के अस्पष्ट भाग हैं। सरल मन से नकल करने की प्रवृत्ति पर कोई संदेह नहीं है।"(फिजिक्स एंड पालिटिक्स (भौतिकी एवंराजनीति शास्त्र) 1915, पृष्ठ 60)

नकल करने की इस प्रवृत्ति के विषय को गेबरिल टार्डे ने वैज्ञानिक अध्ययन का रूप दिया, जिन्होंने नकल करने की प्रवृत्ति को तीन नियमों में बांटा है। उसके तीननियमों से एक है कि नीचे वाले ऊपर की नकल करते हैं। उन्हीं के शब्दों में, "अवसर मिलने पर दरबारी सदा अपने नायकों, अपने राजा या अधिपति की नकल करते हैं और आमजनता भी उसी प्रकार अपने सामंतों की नकल करती है (लॉज ऑफ इमीटेशन (नकल करने के सिद्धांत), अनुवाद : ई.सी. पार्सन्स, पृ. 217)।" नकल के बारे में टार्डे का दूसरानियम है कि चाहे आदर्श पात्र और अनुसरणकर्ता के बीच कितनी ही दूरी क्यों न हों, उनके अनुसार नकल करने की इच्छा और तीव्रता में कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हीं केशब्दों में, "जिस व्यक्ति की नकल की जाती है, वह होता है हमारे बीच सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति या समाज।

दरअसल, जिन्हें हम श्रेष्ठ मानते हैं, उनसे हमारा अंतर कितनाही हो, यदि हम उनसे सीधे संपर्क में आते हैं तो उनका संसर्ग अत्यंत प्रभावोत्पादक होता है। अंतर का अर्थ समाज-विज्ञान के आधार पर लिया गया है। यदि हमारा उनसेप्रतिदिन बार-बार संसर्ग होता है और उनके जैसे रंग-ढंग अपनाने का अवसर मिलता है, तो वह व्यक्ति चाहे हमसे कितने ही ऊंचे स्तर का क्यों न हो, कितना ही अपरिचितहो, फिर भी हम स्वयं को उसके निकट मानते हैं। सबसे कम दूरी पर निकटतम व्यक्ति के अनुसरण का नियम प्रकट करता है कि ऊंची हैसियत वाले व्यक्ति निरंतर सहज प्रभावछोड़ते हैं (लॉज ऑफ इमीटेशन (नकल करने के सिद्धांत), अनुवाद : ई.सी. पार्सन्स, पृ. 225)।"3

हालांकि प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, परंतु अपने विचारों को पुष्ट करने के लिए मैं बताना चाहता हूं कि कुछ जातियों की संरचना नकल से हुई। मुझे लगता है कि यहजाना जाए कि हिंदू समाज में नकल करके जातियां बनाने की परिस्थितियां हैं या नहीं? इस नियम के अनुसार नकल करने की गुंजाइश इस प्रकार है : (1) जिस स्रोत की नकल कीगई है, उसकी समुदाय में प्रतिष्ठा होनी चाहिए, और (2) समुदाय के सदस्यों में प्रतिदिन और अनेक बार संपर्क होने चाहिए। भारतीय समाज में ये परिस्थितियां

मौजूदहैं, इसमें कोई शकर नहीं है। ब्राह्मण अर्द्ध देवता माना जाता है और उसे अंशावतार जैसा कहा जाता है। वह विधि नियोजित करता है और सभी को उसके अनुसार ढालता है।

उसकी प्रतिष्ठा असंदिग्ध है और वह शीर्ष परमानंद है। क्या शास्त्रों द्वारा प्रायोजित और पुरोहितवाद द्वारा प्रतिष्ठिा ऐसा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का प्रभावडालने में विफल हो सकता है? यदि यह कहानी सही है तो उसके बारे में यह विश्वास क्यों किया जाता है कि वह जातिप्रथा की उत्पत्ति का कारण है। यदि वह सजातीय विवाहका पालन करता है तो क्या दूसरों को उसके पद चिह्नों पर नहीं चलना चाहिए। निरीह मानवता! चाहे वह कोई दार्शनिक हो या तुच्छ गृहस्थ, उसे इस गोरखधंधे में फंसना हीपड़ता है, यह अवश्यंभावी है। अनुसरण सरल है, आविष्कार सरल है, आविष्कार कठिन।

जातिप्रथा की संरचना में दूसरों से सीखने की प्रवृत्ति की कितनी भूमिका है, यह बताने के लिए गैर-ब्राह्मण वर्गों की प्रवृत्ति को समझना होगा, जिनके लिए आज तक इसप्रथा के पोषक रीति-रिवाज विद्यमान हैं, हिंदू मस्तिष्क को इन्होंने जकड़ रखा है और उन्हें किसी सहारे की जरूरत नहीं है, सिवाय सतत विश्वास भाव के, जैसे एक पोखरमें जलकुंभी। एक तरीके से हिंदू समाज में सती प्रथा, बालिका विवाह और विधवा की यथास्थिति जातियों की हैसियत के हिसाब से विद्यमान है, परंतु इन प्रथाओं का चलनविभिन्न जातियों में असमान है, जिससे उन जातियों का भेद परिलक्षित होता है (मैं भेद शब्द का प्रयोग टार्डियन अर्थ में कर रहा हूं)। जो जातियां ब्राह्मणों केनिकट हैं, वे इन तीनों प्रथाओं की नकल का कड़ाई से पालन करती हैं। दूसरे जो इनसे कुछ कम निकट हैं, उनमें केवल वैधव्य और बालिका विवाह प्रचलित हैं; अन्य जो कुछ औरदूरी पर हैं, उनमें केवल बालिका विवाह प्रमुख हैं तथा सबसे अधिक दूरी वाले लोग जातिप्रथा के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। मैं निःसंदेह कह सकता हूं कि यह अधूरीनकल इसी प्रकार है, जैसे टार्डे ने 'दूरी' बताई हैं।

आंशिक रूप से यह प्रथाओं का पाश्विक लक्षण है। यह स्थिति टार्डे के नियम का पूर्ण उदाहरण है औरइसमें कोईसंदेह नहीं रह जाता कि भारत में जातिप्रथा निम्न वर्ग द्वारा उच्च वर्ग की नकल का प्रतिफल है। इस स्थान पर मैं अपने ही पूर्वोक्त कथन की पुनरावृत्ति करनाचाहूंगा, जो आपके सम्मुख अनायास और बिना समर्थन के उपस्थित हुआ होगा। मैंने कहा था कि इन विचाराधीन तीन प्रथाओं के बल पर ब्राह्मणों ने जातिप्रथा की नींव डाली।उस विचार के पीछे मेरा तर्क यही था कि इन प्रथाओं को अन्य वर्गों ने वहीं से सीखा है। गैर-ब्राह्मण जातियों में इन रिवाजों की ब्राह्मणों जैसी नकल-प्रवृत्ति कीभूमिका पर प्रकाश डालने के बाद मेरा कहना है कि ये प्रवृत्ति उनमें आज भी मौजूद है, चाहे वे अपनी इस आदत से परिचित भी न हों। यदि इन वर्गों ने किसी से सीखा हैतो इसका अर्थ है कि समाज में उन प्रथाओं का किसी न किसी वर्ग में प्रचलन रहा होगा और उसका दर्जा काफी ऊंचा हुआ होगा, तभी वह दूसरों का आदर्श हो सकता है, परंतुकिसी ईश्वरवादी समाज में कोई आदर्श नहीं हो सकता, सिर्फ ईश्वर का सेवक हो सकता है।

इसमें उस कहानी की पूर्णाहुति हो जाती है कि जो निर्बल थे, जिन्होंने अपने को अलग कर लिया। हमें अब यह देखना है कि दूसरों ने अपने लिए उनके दरवाजे बंद देखकरअपना घर क्यों बंद कर लिया। इसे मैं जातिप्रथा के निर्माण की क्रियाविधि की प्रक्रिया मानता हूं। यही कारीगरी थी, क्योंकि ऐसा

अवश्यंभावी होता है। यही दृष्टिकोणऔर मानसिकता है, जिसके कारण हमारे पूर्ववर्ती इस विषय की व्याख्या करने से कतरा गए, क्योंकि उन्होंने जाति को ही एक अलग ईकाई मान लिया, जबकि वह जातिप्रथा का हीएक अंग होती है। इस चूक या इस पैनी दृष्टि के अभाव के कारण ही सही अवधारणा बनने में मदद नहीं मिली है। अतः सही व्याख्या करने की आवश्यकता है। एक टिप्पणी के जरिएमैं अपनी व्याख्या प्रस्तुत करूंगा, जिसे कृपया आप सदा ध्यान में रखें। वह टिप्पणी इस प्रकार है : जाति अपने आप में कुछ नहीं है, उसका अस्तित्व तभी होता है, जबवह सारी जातियों में स्वयं भी एक हिस्सा हो। दरअसल, जाति कुद है ही नहीं, बल्कि जातिप्रथा है। मैं इसका उदाहरण देता हूं, अपने लिए जाति-संरचना करते समयब्राह्मणों ने ब्राह्मण इतर जातियां बना डालीं। अपने तरीके से मैं यह कहूं कि अपने आपको एक बाड़े में बंद करके दूसरों को बाहर रहने के लिए विवश किया। एक दूसरेउदाहरण से मैं अपनी बात स्पष्ट करूंगा।

भारत को संपूर्ण रूप से देखें, जहां विभिन्न समुदाय हैं और सबको अपने समुदाय से लगाव है, जैसे हिंदू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई और पारसी, लेकिन हिन्दुओं को छोड़करशेष में आंतरिक जातिभेद नहीं हैं। परंतु एक-दूसरे के साथ व्यवहार में उनमें अलग-अलग जातियां हैं। यदि पहले चार समुदाय अपने को अलग कर लेंगे तो पारसी अपने आप हीबाहर रह जाएंगे, परंतु परोक्ष रूप से वे भी आपस में अलग समुदाय बना लेंगे। सांकेतिक रूप से कहना चाहता हूं कि यदि 'क' सजातीय विवाह पद्धति में सीमित रहना चाहताहै, तो निश्चित रूप से 'ख' को भी विवश होकर अपने में ही सिमट कर रह जाना पड़ेगा।

अब यही बात हम हिंदू समाज पर भी लागू करें, आपके सामने एक व्याख्या पहले से मौजूद हें कि निजद्वैतवाद के परिणामस्वरूप जो प्रवृत्ति इस समाज को विरासत में मिलीहै, वह है पृथकतवाद। मेरे इस नए विचार से नैतिकतावादियों की भृकुटि चढ़ सकती हैं, जातपांत की धार्मिक या सामाजिक संहिता जाति विशिष्ट के लिए असाध्य हो सकती है।किसी जाति के उद्दंड सदस्यों को यह आशंका होती है कि उन्हें मनचाही जाति में शामिल होने का विकल्प न देकर, जाति-बहिष्कृत कर दिया गया है। जाति के नियम बहुत कठोरहोते हैं और उनके उल्लंघन की माप का कोई पैमाना नहीं होता है। नयी विचारधारा एक नयी जाति बना देती है, क्योंकि पुरातन जातियां नवीनता को सह नहीं पाती।अनिष्टकारी विचारकों को गुरु मानकर प्रतिष्ठित किया जाता है। जो अवैध प्रेम संबंधों के दोषी होते हैं तो वे भी उसी दंड के भागी होंगे। पहली श्रेणी उनकी है, जोधार्मिक समुदाय से जाति बनाते हैं, दूसरे वे हैं, जो संकर जाति बनाते हैं।

अपनी संहिता का उल्लंघन करने वालों को दंड देने में कोई सहानुभूति नहीं अपनाई जाए। यहदंड होता है, हुक्का-पानी बंद और इसकी परिणति होती है - एक पृथक जाति की रचना। हिंदू मानसिकता में यह कमियां नहीं होतीं कि हुक्का-पानी बंद के भागी अलग होकर एकअलग जाति बना लें। इसके विपरीत वे लोग नतमस्तक होकर उसी जाति में रहकर बने रहना चाहते हैं (बशर्ते कि उन्हें इसकी इजाजत दे दी जाए) परंतु जातियां सिमटी हुईइकाइयां हैं और जानबुझकर उनमें यह चेतना होती है कि बहिष्कृत लोग एक अलग जाति बना लें।

इसका विधान बड़ा निर्दयी है और इसी बल के अनुपालन का परिणाम है कि उन्हेंअपने में सिमटना पड़ता है, क्योंकि अन्य वर्गों ने अपने को ही परिधि में करके अन्य वर्गों को बाहर बंद कर दिया है, जिसका परिणाम है कि नए समुदाय (जातिगत नियमोंके निंदनीय आधार पर निर्मित समुदाय) यंत्रवत् विधि द्वारा आश्चर्यजनक बहुलता के साथ जातियों के बराबर परिवर्तन किए गए हैं। भारत में जाति-संरचना की प्रक्रिया कीयह दूसरी कहानी बताई गई है।

अतः मुख्य सिद्धांत का समापन करते हुए मैं कहना चाहता हूं कि जातिप्रथा का अध्ययन करने वालों ने कई गलतियां की हैं, जिन्होंने उनके अनुसंधान को पथभ्रष्ट करदिया। जातिप्रथा का अध्ययन करने वाले यूरोपियन विद्वानों ने व्यर्थ ही इस बात पर जोर दिया है कि जातिप्रथा रंग के आधार पर बनाई गई, क्योंकि वे स्वयं रंगभेद केप्रति पूर्वाग्रही हैं। उन्होंने जाति समस्या का मुख्य तत्व यही भेद माना है, परंतु यह सत्य नहीं है। डा.केतकर ने सही कहा है कि "सभी राजा, चाहे वे तथाकथितआर्य थे अथवा द्रविड, आर्य कहलाते थे। जब तक विदेशियों ने नहीं कहा, भारत के लोगों को इससे कोई सरोकार नहीं रहा कि कोई कबीला या कुटुंब आर्य है या द्रविड़। चमड़ीका रंग इस देश में जाति का मानदंड नहीं रहा (हिस्ट्री आफ कास्ट पृ. 82)।"

वे अपनी व्याख्या का विवरण देते रहे और इसी बात पर सिर पटकते रहे कि जातिप्रथा के उद्भव का यही सिद्धांत हैं। इस देश में व्यावसायिक और धार्मिक आदि जातियां हैं, यह सत्य है, परंतु किसी भी हालत में उनका सिद्धांत जातियों के मूल से मेल नहीं खाता। हमें यह पता लगाना है कि व्यावसायिक वर्ग जातियां क्यों हैं? इस प्रश्न कोकभी छुआ ही नहीं गया। अंतिम परिणाम यह है कि उन्होंने जाति-समस्या को बहुत आसान करके समझा, जैसे वे चुटकी बजाते ही बन गई हों। इसके विपरीत जैसा मैंने कहा है यहमान्य नहीं हैं, क्योंकि इस प्रथा में बहुत जटिलताएं हैं। यह सत्य है कि जातिप्रथा की जड़ें आस्थाएं हैं, परंतु आस्थाओं के जाति संरचना में योगदान के पहले ही येमौजूद थीं और दृढ़ हो चुकी थीं। जाति-समस्या के संबंध में मेरे अध्ययन के चार पक्ष हैं : (1) हिंदू जनसंख्या में विविध तत्वों के सम्मिश्रण के बावजूद इसमें दृढ़सांस्कृतिक एकता है, (2) जातियां इस विराट सांस्कृतिक इकाई का अंग हैं, (3) शुरू में केवल एक ही जाति थी, और (4) इन्हीं वर्गों में देखी-देखी या बहिष्कार सेविभिन्न जातियां बन गईं।

आज भारत में जाति-समस्या ने एक दिलचस्प मोड़ ले लिया है, क्योंकि इस अप्राकृतिक विधान को तिलांजलि देने के लिए सतत प्रयत्न हो रहे हैं। सुधार के ये प्रयत्नजातियों के मूल से संबंधित विवादों से उत्पन्न हुए हैं कि क्या यह प्रथा सर्वोच्च स्तर के आदेशों से हुई या विशिष्ट परिस्थितियों में मानव समाज के सहज विकास काप्रतिफल है। जो व्यक्ति बाद के विचार के पक्षधर हैं, मुझे आशा हैं कि उन्हें इस प्रबंध से कुछ विचार सामग्री मिलेगी।

इस विषय के व्यावहारिक महत्त्व के साथ हीजाति प्रथा एक सर्वव्यापी व्यवस्था है और इसका सैद्धांतिक आधार जानने की उत्कंठा मुझ में जगी। उसी के परिणामस्वरूप मैंने अपने विचार आप लोगों के सम्मुख उपस्थितकिए, जिन्हें मैं सार्थक मानता हूं और वे बातें आपके समक्ष रखीं, जिन पर यह व्यवस्था टिकी है। मैं इतना हठधर्मी भी नहीं हूं कि यह सोच लूं कि मेरा कथन ब्रह्मवाक्य है या इस

विचार-विमर्श में योगदान से बढ़कर कुछ है। मैं सोचता हूं कि धारा का प्रवाह गलत दिशा में मोड़ दिया गया है और इस आलेख का प्राथमिक उद्देश्य यहबताना है कि अनुसंधान का सही मार्ग कौन सा है, ताकि एक सत्य उजागर हो।

हमें इस विषय के विश्लेषण में पक्षपात रहित रहना है। भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होनाचाहिए, बल्कि इस विषय पर वैज्ञानिक और निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए। मैं इस बात से प्रसन्न हूं कि मेरा दृष्टिकोण सही दिशा में है, मुद्दे पर जो असहमति है, वह तार्किक है, फिर भी कुछ बातों पर सदा असहमति बनी रह सकती है, अंत में मुझे इस बात पर गर्व है कि मैंने जातिप्रथा के बारे में एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है।यदि यह आधारहीन लगेगा तो मैं इसे तिलांजलि दे दूंगा।

******

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 29-36
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कहानी

# बाँका ज़मीनदार

**प्रेमचंद**

*एक क़त्ल का मुक़दमा जीतने के बदले वकील ठाकुर प्रद्युन सिंह उस मौज़े को बतौर नज़राने के पा जाते हैं जिसे वह बहुत अर्से से पसंद करते आ रहे थे। मौज़ा मिलने पर वह रिआया के साथ इतनी सख़्ती करते हैं कि गाँव कई बार उजड़ता है और बसता है। फिर एक ऐसी क़ौम उस गाँव में आ कर बसती है जो ठाकुर साहब को लोहे के चने चबवा देती है।*

ठाकुर प्रदुम्न सिंह एक मुमताज़ वकील थे और अपने हौसले हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर, उनके अक्सर अहबाब कहा करते कि इजलास अदालत में उनके ये मर्दाना कमालात ज़्यादा नुमायां तौर पर ज़ाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शाज़ ही किसी मुआमले में सुर्ख़रूई हासिल होती थी। उनके मुवक्किलों के हुस्न-ए-अक़ीदत में ज़र्रा भर भी फ़र्क़ नहीं आता था। सदर इंसाफ़ पर जलवा फ़रमा होने वाले बुज़ुर्गों की बेख़ौफ़ आज़ादी पर किसी क़िस्म का शुब्हा करना कुफ़्र ही क्यों न हो मगर शहर के वाक़िफ़कार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मुआमले में ज़िद पकड़ लेते तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इंसाफ़ को भी अपना ताबे-ए-फ़रमान बना लेते थे। एक से ज़्यादा मौक़ों पर उनके जीवट और जिगर वो मोजज़े कर दिखाते थे जहाँ इंसाफ़ और क़ानून ने जवाब दे दिया था। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना औसाफ़ के सच्चे जौहर शनास थे। अगर मुवक्किल को फ़न-ए-ज़ोर-आज़माई में कुछ दस्तरस हो तो ये ज़रूरी नहीं था कि वो उनकी ख़िदमत हासिल करने के लिए माल-ओ-ज़र का मिन्नतकश बने। इसी लिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फ़िक़ैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वो ज़बरदस्त पुरतासीर और अमली नुक्ता क़ानून था जिसकी तरदीद करने में इंसाफ़ को भी ताम्मुल होता था। वो ग़रूर और सच्चे ग़रूर की दिल से क़दर करते थे। उनके ख़ाना में तकल्लुफ़ के आस्ताने बहुत ऊंचे थे वहाँ झुकने की ज़रूरत न थी। इंसान ख़ूब सर उठाकर जा सकता था। ये मोतबर रिवायत है कि एक बार उन्होंने कभी मुक़द्दमे को बावजूद बहुत मिन्नत व इसरार के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ दहक़ानी था। उसने जब मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए दहक़ान को साइन से लगा लिया।

दौलत को ज़मीन से अज़ली मुनासिब है। ज़मीन में आम कशिश के सिवा एक ख़ास ताक़त होती है जो हमेशा दौलत को अपनी तरफ़ खींचती है। सूद और तमस्सुक और तिजारत ये दौलत की दरमियानी मंज़िलें हैं। ज़मीन उसकी मंज़िल-ए-मक़्सूद है। ठाकुर प्रदुमन सिंह की निगाहें बहुत अरसे से एक बहुत ज़रख़ेज़ मौज़ा पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का अकाउंट कभी हौसले को क़दम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफ़ा उसी मौज़ा का ज़मींदार एक क़त्ल के मुआमले में माख़ूज़ हुआ। उसने तो सिर्फ़ रस्मो रिवाज के मुवाफ़िक़ एक असामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था, लेकिन अगर आफ़ताब की तमाज़त या जिस्मानी कमज़ोरी या प्यास की शिद्दत उसकी जान लेवा बन जाये तो इसमें ज़मींदार की क्या ख़ता थी। ये वुकला-ए-शहर की ज़्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमादा न हुआ या मुम्किन है ज़मींदार की तह दस्ती को भी इसमें कुछ दख़ल हो। बहरहाल उसने चारों तरफ़ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की पनाह ली। मुक़द्दमा निहायत कमज़ोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताक़त से धावा किया था और उसकी कुमुक के लिए हुकूमत और इख्तियार के ताज़ा दम रिसाले तैयार थे।

ठाकुर साहब आज़मूदाकार सपेरों की तरह साँप के मांद में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौक़े पर उन्हें ख़ुश्क मस्लिहत के मुक़ाबले में अपनी मुद्दाओं का पल्ला झुकता हुआ नज़र आया। ज़मींदार की तशफ़्फ़ी की और वकालत नामा दाख़िल कर दिया और फिर ऐसी जाँफ़िशानी से मुक़द्दमे की पैरवी की। कुछ इस तरह जान लड़ाई कि मैदान से फ़तह व नुसरत के शादियाने बजाते हुए निकले। ज़बान-ए-ख़ल्क़ इस फ़तह का सेहरा उनकी क़ानूनी दस्तरस के सर नहीं, उनके मर्दाना औसाफ़ के सर रखती है। क्योंकि उन दिनों वकील साहब नज़ाइर व दफ़आत की हिम्मत शिकन पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल के हौसला बख्श दिलचस्पियों में ज़्यादा मुनहमिक रहते थे लेकिन ये मुतलक़ क़रीं क़ियास नहीं मालूम होता। ज़्यादा वाक़िफ़कार लोग कहते हैं कि अनार के बम गोलों और सेब व अंगूर की गोलीयों ने पुलिस के इस हमला पुरशोर को मुंतशिर कर दिया। अल-ग़रज़ मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। ज़मींदार की जान बची। वो मौत के मुँह से बाहर निकल आया। उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला, "ठाकुर साहब! मैं इस क़ाबिल तो नहीं कि आपकी कुछ ख़िदमत कर सकूँ, ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान ने ग़रीब सुदामा के सूखे चावल ख़ुशी से क़बूल किए थे। मेरे पास बुज़ुर्गों की यादगार एक छोटा सा वीरान मौज़ा है, उसे आपकी नज़र करता हूँ। आपके लायक़ तो नहीं, लेकिन मेरी ख़ातिर से उसे क़बूल कीजिए। मैं आपका जस कभी नहीं भूलूँगा।"

वकील साहब फड़क उठे। दो-चार बार आरिफ़ाना इनकार के बाद इस नज़र को क़बूल कर लिया। मुँह माँगी मुराद बर आई।

इस मौज़े के लोग निहायत सरकश और फ़ित्ना पर्दाज़ थे जिन्हें इस बात का फ़ख्र था कि कभी कोई ज़मींदार उन्हें पाबंद-ए-अनान नहीं कर सका लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रदुम्न सिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गए। एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियां खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाये और तब गर्दनें झुका दें। समझ गए कि ये जिगर का मज़बूत और आसन का पक्का शहसवार है।

असाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच बेच कर बैलून की तलाश में दरबदर फिरते थे। गाँव की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुल्हन बनी हुई थी और फ़ाक़ा कश कुम्हार बारात का दूल्हा था। मज़दूर मौक़े के बादशाह बने हुए थे। टपकी हुई छतें उनके निगाह-ए-करम की मुंतज़िर, घास से ढके हुए खेत उनके दस्त-ए-शफ़क़त के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिसे चाहते थे उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज़, मनचले लड़कों का मुहासिरा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाए पहर रात से टपके की खोज में घूमते नज़र आते थे। जो बावजूद पीराना साली के भजन और जाप से ज़्यादा दिलचस्प और पुर मज़ा शुग़ल था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ़ हरियाली और सब्ज़ा और नुज़हत का हुस्न-ए-बसीत।

उन्हें दिनों ठाकुर साहब मर्ग-ए-बेहंगाम की तरह गाँव में आए। एक सजी हुई बारात थी। हाथी और घोड़े और साज़-ओ-सामान, लठैतों का एक रिसाला साथ गाँव के लोगों ने ये तुमतराक़ और कर्र-ओ-फ़र्र देखा तो रहे सहे होश अड़गए। घोड़े खेतों में ऐंडने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक़्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और तब बआवाज़-ए-बुलंद बोले, "मैंने सुना है कि तुम लोग बड़े सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो क्या मंज़ूर है!"

एक बूढ़े किसान ने बेद-ए-लर्ज़ां की तरह काँपते हुए जवाब दिया, "सरकार आप हमारे राजा हैं हम आपसे ऐंठ कर कहाँ जाएंगे।"

ठाकुर साहब तेवर बदल कर बोले, "तुम लोग सब के सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाख़िल करदो और ख़ूब ध्यान देकर सन लो मैं हुक्म को दोहराना नहीं जानता, वरना मैं गाँव में हल चलवा दूंगा और घरों को खेत बनादूंगा। सारे गाँव में कुहराम मच गया तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्द फ़राहम होना ग़ैर-मुमकिन था। रात इसी हैसबैस में कटी। अभी तक मिन्नत व समाजत के बरक़ी तासीर की उम्मीद बाक़ी थी। सुबह बहुत इंतज़ार के बाद आई तो क़ियामत बन कर आई। एक तरफ़ तो जब्र-ओ-तशद्दुद और ज़ुल्म-ओ-तहक्कुम के हंगामे गर्म थे। दूसरी तरफ़ दीदा-ए-गिर्यां और आह-ए-सर्द और नाला-ए-बेदाद के। ग़रीब किसान अपने अपने बुक़चे लादे बेकसाना अंदाज़

से ताकते, आँखों में इल्तिजा, बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते बिलकते किसी नामालूम दयार-ए-ग़ुर्बत को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव शहर-ए-ख़मोशां बना हुआ था।

ये ख़बर बहुत जल्द चारों तरफ़ फैल गई। लोगों को ठाकुर साहब के इंसान होने पर शकूक होने लगे। गाँव वीरान पड़ा था। कौन उसे आबाद करे! किस के बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी ख़वातीन कूँओं पर पानी भरें। राह चलते मुसाफ़िर तबाही का ये नज़ारा आँखों से देखते और अफ़सोस करते, नहीं मालूम बेचारे ग़ुर्बत ज़दों पर किया गुज़री। आह! जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह एक पूरा साल गुज़र गया। तब गाँव के नसीब जागे। ज़मीन ज़रख़ेज़ थी, मकानात मौजूद। रफ़्ता-रफ़्ता ज़ुल्म की ये दास्ताँ फीकी पड़ गई। मनचले किसानों की हवसनाक निगाहें उसपर पड़ने लगीं। बला से ज़मींदार ज़ालिम है, जाबिर है, बेरहम है, हम उसे मनालेंगे, तीन साल की पेशगी लगान का क्या ज़िक्र, वो जैसे ख़ुश होगा उसे ख़ुश करेंगे! उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर और आँखों पर रखेंगे, वो राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। ज़िंदगी की कश्मकश और जंग में ख़ुद्दारी और ग़ुर्बत को निबाहना कैसा मुश्किल काम है। दूसरा असाढ़ आया तो वो गाँव फिर रश्क-ए-गुलज़ार बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाज़ों पर घरौंदे बनाने लगे। मर्दों के बुलंद नग़मे खेतों में सुनाई देने लगे और औरतों की सुहानी गीतें चक्कीयों पर ज़िंदगी की दिलफ़रेब जल्वे नज़र आने लगे।

साल भर और गुज़रा जब रबी की दूसरी फ़सल आई तो सुनहरी यादव को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर की उफ़्तादा ज़मीन ने सोना उगल दिया था। औरतें ख़ुश थीं कि अब की नए नए गहने बनवाएंगे। मर्द ख़ुश थे कि अच्छे अच्छे बैल मोल लेंगे। और दारोगा जी के मसर्रत की तो कोई इंतिहा न थी।

ठाकुर साहब ने ये ख़ुश आइंद ख़बरें सुनीं और देहात की सैर को चले। वही तुज़्क-ओ-एहतिशाम, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फ़ौज! गाँव वालों ने उनके ख़ातिर-ओ-ताज़ीम की तैयारीयां करनी शुरू कीं। मोटे ताज़े बकरों का एक पूरा गल्ला चौपाल के दरवाज़ा पर बाँधा। लकड़ी के अंबार लगा दिए। दूध के हौज़ भर दिए। ठाकुर साहब गाँव के मेंडे पर पहुंचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी पेशवाई के लिए दस्त-बस्ता खड़े थे। लेकिन पहली चीज़ जिसकी फ़रमाइश हुई वो लेमोनेड और बर्फ़ था। असामियों के हाथों के तोते उड़गए। ये पानी का बोतल उस वक़्त वहाँ आब-ए-हयात के दामों बिक सकता था मगर बे चारे दहक़ान! अमीरों के चोंचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सर झुकाए दम-बख़ुद खड़े थे। चेहरे पर ख़िफ़्फ़त और नदामत थी। दिलों में धड़कन और ख़ौफ़, ईश्वर! बात बिगड़ गई है। अब तुम्हें संभालो। बर्फ़ की ठंडक न मिली तो ठाकुर साहब के प्यास की आग और भी तेज़ हुई। ग़ुस्सा भड़क

उठा। कड़क कर बोले, "मैं शैतान नहीं हूँ कि बकरों के ख़ून से प्यास बुझाऊं। मुझे ठंडा बर्फ़ चाहिए। और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारे औरतों के आँसूओं से ही बुझेगी। एहसान फ़रामोश कमज़र्फ़, मैंने तुम्हें ज़मीन दी, मकान दिए और हैसियत दी और इसका सिला ये है कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ। तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रिआयत की जाये। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूं। वरना क़हर हो जाएगा। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दोहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है जो कुछ ले जा सको ले जाओ, लेकिन शाम को मैं किसी की मन्हूस सूरत न देखूं। ये रोना और चीख़ना फ़ुज़ूल है। मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का। आँसूओं से नहीं पसीजता।"

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव में कोई दीया जलाने वाला तक न रहा। फूलता फलता हुआ गाँव भूत का डेरा बन गया।

अरसा-ए-दराज़ तक ये वाक़िआ क़ुर्रब-ओ-जवार के मनचले क़िस्सा गोयों के लिए दिलचस्पियों का माख़ज़ बना रहा। एक साहब ने उस पर अपनी तब्अ-ए-मौज़ूँ की जौलानियाँ भी दिखाईं। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की कि गाँव आबाद हो जाए लेकिन किस की जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में क़दम रखता जहाँ फ़र्बही की सज़ा फांसी थी। कुछ मज़दूर पेशा लोग क़िस्मत का जुआ खेलने लगे मगर चंद महीनों से ज़्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आख़िर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर हो कर अराज़ी माफ़ का आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रिआयत ने रही सही साख भी खो दी।

इस तरह तीन साल गुज़र जाने के बाद एक रोज़ वहाँ बंजारों का क़ाफ़िला आया। शाम हो गई थी और पूरब तरफ़ से तारीकी की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है जहाँ आदमीयों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का राज़ समझ में न आया। मकानात मौजूद, ज़मीन ज़रख़ेज़, सब्ज़ा से लहराए हुए खेत और इंसान का नाम नहीं। कोई और गाँव क़रीब न था। वहीं फ़िरोकश हो गए। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना नग़मा अलापना शुरू किया और क़ाफ़िला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर-ओ-जब्र की ये दास्तान-ए-तवील उन्हें सुनाई। सैरो सियाहत ने उन्हें मुश्किलात का आदी बना दिया था। आपस में कुछ मश्वरा किया और फ़ैसला हो गया। ठाकुर साहब के दर-ए-दौलत पर जा पहुंचे और नज़राने दाख़िल करदिए। गाँव फिर आबाद हुआ।

ये बंजारे बला के जफ़ाकश, आहनी हिम्मत और इरादे के लोग थे। जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धूँएं के बादल उठे। कोलुव्हाड़ों ने फिर दुखानी चादरें ज़ेब-ए-तन

कीं कि तुलसी के चबूतरे पर फिर चराग़ जले, रात को रंगीन तबा नौजवान की अलापें सुनाई देने लगीं। सब्ज़ा ज़ारों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिए और किसी दरख़्त के नीचे बैठे चरवाहे की बाँसुरी की मद्धम और रसीली सदा दर्द और असर में डूबी हुई, इस क़ुदरती मंज़र में जादू की कशिश पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख़ व सफ़ेद मलाहत, तिल की ऊदी बहार और सुन की शोख़ ज़र्दी खेतों में अपने बूक़लमूं हुस्न के जल्वे दिखाती थी। किसानों के मंढियों और छप्परों पर भी गुल-ओ-समर की रंग आमेज़ियां नज़र आती थीं। उस पर पानी की हल्की हल्की फुवारें हुस्न-ए-क़ुदरत के लिए मश्शाता का काम दे रही थीं। जिस तरह आरिफ़ों के दिल नूर-ए-हक़ीक़त से लबरेज़ होते हैं उसी तरह सागर और तालाब शफ़्फ़ाफ़ पानी से लबरेज़ थे। शायद राजा इंद्र कैलाश की तरावत बेज़ बुलंदीयों से उतर कर अब मैदानों में आने वाले थे, इसी लिए सेरचश्म क़ुदरत ने हुस्न और बरकत और उम्मीद के तोशे ख़ाने खोल दिए थे। वकील साहब को भी तमन्नाए सैर ने गुदगुदाया। हस्ब-ए-मामूल अपने रईसाना कर्र-ओ-फ़र के साथ गाँव में आ पहुंचे। देखा तो क़नाअत और फ़राग़त की बरकतें चारों तरफ़ नमुदार थीं।

गाँव वालों ने उनकी तशरीफ़ आवरी की ख़बर सुनी। सलाम को हाज़िर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे अच्छे कपड़े पहने, ख़ुद्दारी के साथ क़दम उठाते हुए देखा। उनसे बहुत ख़ंदापेशानी से मिले। फ़सल की कैफ़ियत पूछी। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे कामिल ज़िम्मेदारी और इमामत की शान टपकती थी जवाब दिया, "हुज़ूर के क़दमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ़ नहीं। आपकी दी हुई नेअमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं आप हैं और आपके लिए जान तक हाज़िर है।"

ठाकुर साहब ने तेवर बदल कर कहा, "मैं अपनी ख़ुशामद सुनने का आदी नहीं हूँ।" बूढ़े हरदास की पेशानी पर बल पड़े, ग़रूर को चोट लगी। बोला, "मुझे भी ख़ुशामद करने की आदत नहीं है।"

ठाकुर साहब ने ऐंठ कर जवाब दिया, "तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज़ नहीं। ताक़त की तरह तुम्हारी अक़्ल भी बुढ़ापे के नज़र हो गई।"

हरदास ने अपने साथियों की तरफ़ देखा। ग़ुस्से की हरारत से सबकी आँखें फैली और इस्तिक़लाल की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला, "हम आपकी रईयत हैं, लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे अपने ज़मींदार को अपना सर दे दें। आबरू नहीं दे सकते।"

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलंद आवाज़ में ताईद की, "आबरू जान के पीछे है।" ठाकुर साहब के ग़ुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा सुर्ख़ हो गया। ज़ोर से बोले, "तुम लोग ज़बान

सँभाल कर बातें करो, वरना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाए आए थे उसी तरह निकाल दिए जाओगे। मैं प्रदुम्न सिंह हूँ जिसने तुम जैसे कितने ही हैकड़ों को इसी जगह पैरों से कुचल डाला है।" ये कह कर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुन सिंह को बुलाकर कहा, "ठाकुर अब इन च्यूँटीयों के पर निकल आए हैं। कल शाम तक इन हशरात से मेरा गाँव पाक व साफ़ हो जाए।"

हरदास खड़ा हो गया। ग़ुस्सा अब चिंगारी बन कर आँखों से निकल रहा था। बोला, "हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जिएंगे इसी गाँव में रहेंगे। यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अख्खड़ गंवार हैं। नाहक़ ग़रीबों की जान के पीछे न पड़िए। ख़ून ख़राबा हो जाएगा। लेकिन आप को यही मंज़ूर है तो हमारी तरफ़ से भी आपके सिपाहियों को चुनौती है। जब चाहें दिल के अरमान निकाल लें।"

इतना कह कर उसने ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी भी अंदाज़-ए-पुरग़ुरूर के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुन सिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि ये लोहे के चने हैं। लेकिन शोहदों का सरग़ना था। कुछ अपने नाम की लाज थी।

दूसरे दिन शाम के वक़्त जब रात और दिन में मुड़भेड़ हो रही थी इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वो धौल धप्पा हुआ कि ज़मीन थर्रा गई। ज़बानों ने मुँह के अंदर वो मार्के दिखाए कि आफ़ताब मारे ख़ौफ़ के पच्छिम में जा छुपा। लाठियों ने सर उठाया लेकिन क़ब्ल इसके कि वो डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिया की मुस्तहिक़ हों अर्जुन सिंह ने दानिशमंदी से काम लिया। ताहम उनके चंद आदमीयों के लिए गुड़ और हल्दी पीसने के सामान हो चुके थे।

वकील साहब ने अपनी फ़ौज की ये हालत-ए-ज़ार देखी। किसी के कपड़े फटे हुए किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँपते काँपते बेदम, ख़ून बहुत कम नज़र आया। क्योंकि ये एक बेश बहा जिन्स है और उसे डंडों की ज़द से बचा लिया गया था। तो उन्होंने अर्जुन सिंह की पीठ ठोंकी और उनकी शुजाअत व जाँबाज़ी की ख़ूब दाद दी। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी बारिश हुई कि ये सब गर्द-ओ-ग़ुबार धुल गया।

सुबह को इस रिसाला ने ठंडे ठंडे घर की राह ली और क़सम खा गए कि अब भूल कर भी इस गाँव का रुख न करेंगे। तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमीयों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हुए। इख्तियार और हुकूमत अगर मसनद-ए-ग़रूर से इतराए तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है।

जब सब आदमी आगए तो ठाकुर साहब एक एक करके उनसे बग़लगीर हुए और कहा, "मैं ईश्वर का बहुत मशकूर हूँ कि मुझे इस गाँव के लिए जिन आदमीयों की तलाश थी वो लोग मिल गए।

आपको मालूम है कि ये गाँव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। इसका सबब यही था कि वो लोग मेरे मेयार पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था। लेकिन मेरी दिली ख़्वाहिश ये थी कि इस गाँव में वो लोग आबाद हों जो ज़ुल्म-ओ-सितम का मर्दों की तरह सामना करें जो अपने हुक़ूक़ और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफ़ाज़त करें। जो हुकूमत के ग़ुलाम न हों, जो रोब और इख्तियार की निगाह तेज़ देखकर बच्चों की तरह ख़ौफ़ से सहम न जाएं। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुक़्सान और नदामत और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएं पूरी हो गई हैं। मुझे इत्मीनान है कि आप नामुवाफ़िक़ हवाओं और मुतलातुम मौजों का कामयाबी से मुक़ाबला करेंगे। मैं आज इस गाँव से दस्तबरदार होता हूँ। आज से ये आपकी मिल्कियत है। आप ही उसके ज़मींदार और मुख़्तार हैं। ईश्वर से मेरी यही दुआ है कि आप फूलें फलें और सरसब्ज़ हों।"

इन अलफ़ाज़ ने दिलों पर तस्ख़ीर का काम किया। लोग आक़ा परस्ती के जोश से मस्त हो हो कर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गए और कहने लगे, "हम आपके क़दमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका सा मुरब्बी और क़द्रदाँ और रिआया परवर बुज़ुर्ग हम कहाँ पाएंगे।"

जाँबाज़ाना अक़ीदत और हमदर्दी, वफ़ादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और मुअस्सर नज़ारा आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने फ़ैयाज़ाना इरादे पर साबित क़दम रहे और गो पचास साल से ज़्यादा गुज़र गए हैं लेकिन उन्हीं बंजारों के विरसा अभी तक मौज़ा साहब गंज के मुआफ़ीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रदुम्न सिंह की पूजा और मिन्नतें करती हैं। और गो अब इस मौज़े के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदीयों पर पहुँच गए हैं लेकिन बूढ़े और अख्खड़ हरीदास के नाम पर अब भी फ़ख्र करते हैं और भादों सुदी एकादशी के दिन अब भी उस मुबारक फ़तह की यादगार में जश्न मनाए जाते हैं।

*******

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 37-42
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# शिक्षा और संस्कृति

श्रुति टंडन
व्याख्याता,स्माजशास्त्र
राजकीय मीरा कन्या विद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान

**सार**

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है और शिक्षक इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक है। अध्यापकों के युवा पीढ़ी को परमार्जित रूप से विकसित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभानी होती है। उन्हें यह एक तरफ परम्परागत संस्कृति को सम्भालने तथा दूसरी ओर वैज्ञानिक तालमेल से युक्त विकसित समाज में जीने का सबक सीखाना होता है। इसीलिए अध्यापकों को अपने समाज की समस्याओं और केन्द्रीय मुद्दों को समझने की आवश्यकता।

शिक्षा एक व्यापक एवं गतिशील सामाजिक प्रक्रिया है। शिक्षा द्वारा ही आज हम मंगल ग्रह तक पहुँचने में सफल हुए हैं। यदि हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो शिक्षा मनुष्य की जन्म जात शक्तियों का विकास तथा उदातीकरण करती है। सामाजिक दृष्टि से वह उसका सामाजिकरण करती है अर्थात् उसमें सामाजिक गुणों का विकास करती है। राजनीतिक दृष्टि से वह उसे राष्ट्र का सुयोग्य नागरिक बनाती है और धार्मिक दृष्टि से वह उसे पशु से देवता की ओर ले जाती है। इस प्रकार शिक्षा मानव जीवन के समस्त पक्षों के विकास में सहयोगपूर्ण कार्य करती है। विकासात्मक कार्यों के अन्तर्गत मनुष्य की प्राकृतिक रूचियों के विकास और शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक विकास को रखा जा सकता है। सामाजिक कार्यों के अन्तर्गत सामाजिक भावना की जागृति, सामाजिक चेतना और परिवर्तन, सामाजिकरण, भावनात्मक एकता के विकास आदि कार्यों को रखा जा सकता है। सांस्कृतिक कार्यों में संस्कृति की सुरक्षा और हस्तान्तरण को रखा जा सकता है। रचनात्मक कार्यों में जीविकोपार्जन सम्बन्धी हस्तकौशल, उत्पादन कार्य और उद्योगों को चलाने

सम्बन्धी कार्यों को रखा जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा से व्यक्ति जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण बनाता है। इस दृष्टिकोण के विकास में संस्कृति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृति एक अत्यन्त धारणा है। जब हम शिक्षा के सन्दर्भ में बात करते हैं तब हम उस शिक्षा की बात करते हैं जो कि सांस्कृतिक वातावरण में पाई जाती है। संस्कृति न केवल शिक्षा के लिए रूपरेखा प्रदान करती है, अपितु यह शिक्षा को निर्देश भी देती है।

शिक्षा सांस्कृतिक विचारधारा का ही एक भाग है। इसका स्वरूप उसी संस्कृति से आंका जाता है, जिसमें कि यह संगठित होती है या फिर यह भी कहा जा सकता है कि इसके अस्तित्व का भी लोगों की संस्कृति से ही अनुमान लगाया जाता है। शिक्षा केवल संस्कृति के स्थानान्तरण से ही सम्बन्धित नहीं है अपितु यह नई सांस्कृतिक विचारधाराओं का भी निर्माण करती है। यह वर्तमान संस्कृति में समय एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन लाती है। व्यक्ति को सांस्कृतिक परिवर्तन लाने योग्य बनाया जाता है ताकि वह परिवर्तनशील वातावरण में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

इसके साथ-साथ उसे जीवन में परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करने योग्य भी बनाया जाता है ताकि वह परिवर्तित सामाजिक जीवन को स कर सकें, जिसमें उसने जन्म लिया है। अतः यह सर्वविदित हैः-शिक्षा संस्कृति का उत्पाद हैतथा शिक्षा नई पीढ़ियों के प्रति संस्कृति के विकास का कार्य करती है।इतना ही नहीं शिक्षा ही सांस्कृतिक परिवर्तन में सहायक होती है और शिक्षा व्यक्ति को परिवर्तित सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप व्यवहार करने योग्य बनाती है।

**संस्कृति एक श्रेष्ठतम धरोहर**

संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम धरोहर है, जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ता जा रहा है। मानव और पशु में मुख्य अन्तर संस्कृति का ही है। संस्कृति के अभाव में मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। मानव में ही वह अद्भुत शक्ति एवं क्षमता मौजूद है कि वह संस्कृति का निर्माता कहलाने का अधिकारी है। प्रमुख मानवशास्त्री लेस्ली हाइट के अनुसार सीधे खड़े हो सकने की क्षमता, स्वतंत्रतापूर्वक घुमाये जा सकने वाले हाथ, तीक्ष्ण एवं केन्द्रित की जा सकने वाली दृष्टि, मेधावी मस्तिष्क, प्रतीकों के निर्माण की क्षमता के विशेषताएँ हैं, जिनके कारण मानव संस्कृति का निर्माण का पाया है।

संस्कृति का धनी होने के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है और वह अति-प्राणी कहलाने का अधिकारी है। संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं होती वरन् सम्पूर्ण समाज की देन है। इसी कारण संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है। संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति

करती है। इसमें समय, स्थान, समाज एवं परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढ़ालने की क्षमता होती है।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। संस्कृत और संस्कृति दोनों ही शब्द 'संस्कार' से बने हैं। संस्कार का अर्थ है कुछ कृत्यों की पूर्ति करना। संस्कृति का अर्थ होता है विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करना। यह परिमार्जन की प्रक्रिया है।संस्कृति एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसकी व्याख्या विभिन्न अर्थों से की गई है। इतिहासकार संस्कृति शब्द का प्रयोग मानव समाज एवं समूह की उन्नत अवस्था के लिए करते हैं। धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कला, संगीत, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में मानव ने प्राचीन काल से वर्तमान तक जितनी उपलब्धियाँ प्राप्त की है, इतिहासकार उन्हें संस्कृति की श्रेणी में रखते हैं। संस्कृति के नीतिशास्त्रीय अर्थ का सम्बन्ध उन वस्तुओं से है जो मानव जीवन को आनन्द प्रदान करती है। नैतिक दृष्टि से संस्कृति का सम्बन्ध नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, आदर्श नियमों एवं सद्गुणों से है।

नीतिशास्त्र में संस्कृति शब्द का प्रयोग धार्मिक एवं नैतिक गुणों से युक्त आचरण के लिए किया जाता है।मानव शास्त्र में संस्कृति शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थों में हुआ है, जिसमें संस्कृति को जीवन की सम्पूर्ण विधि के रूप में स्वीकारा गया है। टायलर के अनुसार 'संस्कृति वह समग्र जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून तथा और ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश है जो मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।' लिंटन संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते है कि 'संस्कृति ज्ञान, धारणाएँ एवं प्राकृतिक व्यवहार के प्रतिमानों का कुल योग है जिसके सभी भागीदार होते हैं तथा जो हस्तान्तरित की जाती है।' समाजशास्त्रीय अर्थ में संस्कृति को समाज की धरोहर या विरासत के रूप में परिभाषित किया गया है।

बीयस्टीड के अनुसार संस्कृति के अन्तर्गत हम जीवन जीने, कार्य करने एवं विचार करने के उन सभी तरीकों को सम्मिलित करते हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हैं और समाज के स्वीकृत अंग बन चुके हैं। अतः यह सर्वविदित है कि हमारी संस्कृति हमारे ऊपर एक अकाट्य प्रभाव डालती है। हमारी जीवन पद्धति काफी हद तक इसी से प्रभावित होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने निजी तरीकों एवं साधनों का प्रयोग करता है।

परन्तु इसके साथ-साथ वह हर समय संस्कृति के द्वारा निर्देशित किया जाता है जो समय-समय पर उसे शिक्षित करती है। शिक्षा का कार्य व्यक्ति को अपने जीवन के लिए तैयार करना है। शिक्षा का यह कार्य तब तक समाप्त ही नहीं हो सकता जब तक कि लोगों को संस्कृति से न जोड़ा जाए।

**संस्कृति और शिक्षा**

शिक्षा की औपचारिक संस्थाओं की स्थापना सोच-समझकर समाज और राज्य करते है, जैसे - सरकार में शिक्षा विभाग और शिक्षा की संस्थाएँ, जैसे - विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय। इन संस्थाओं द्वारा जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है उसके उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधियाँ पहले से ही निश्चित होते है।

इन संस्थाओं में शिक्षा शिक्षकों द्वारा उनकी देखरेख में एक निश्चित प्रक्रिया के द्वारा दी जाती है। समाज अथवा राज्य के उद्देश्यों की प्राप्ति इन संस्थाओं के द्वारा सम्भव हो सकती है। पर सबसे महत्वपूर्ण देन इन औपचारिक संस्थाओं की यह है कि ये संस्थाएँ विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के संग हमें हमारी संस्कृति की शिक्षा देती हैं। इन संस्थाओं के अभाव में हम अपनी संस्कृति समाज द्वारा अर्जित गुण और समाज की उपलब्धियों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित नहीं कर सकते। हालांकि इस प्रकार की शिक्षा की अपनी सीमाएँ हैं, पर साथ ही इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि यदि इन संस्थाओं के वातावरण को संस्कृति से जोड़ा जाए तो यह ना सिर्फ व्यक्तित्व विकास में और राष्ट्र निर्माण व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृति का परचम फहराने में सहयोग कर सकती हैं।

संस्कृति शिक्षा के सभी पक्षों को प्रभावित करती है। शिक्षा के अर्थ और लक्ष्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विचारों, मूल्यों तथा समाज की रूपरेखा पर निर्भर करते हैं। इसी तरह समाज का शैक्षणिक पाठ्यक्रम उसकी संस्कृति पर निर्भर करता है ताकि पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा के लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके। क्योंकि शिक्षा के लक्ष्य उस समाज विशेष की संस्कृति से प्रभावित होते हैं और उसी के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसीलिए पाठ्यक्रम समाज की संस्कृति के अनुरूप ही तैयार किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि किसी समाज का शैक्षणिक पाठ्यक्रम उन्हीं विचारों एवं आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए जो कि समाज में सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा अनुभव की जाती है।

शिक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम के माध्यम से समाज की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को अनुभव करती है जिसके परिणामस्वरूप समस्त शैक्षणिक क्रियाएँ एवं कार्यक्रम किए जाते हैं। शिक्षण विधियों पर भी संस्कृति का गहन प्रभाव है। पुराने समय में शिक्षा अध्यापक पर केन्द्रित होती थी तथा बच्चों की रूचि एवं आवश्यकताओं को जाने बिना उन्हें पढ़ाने पर जोर दिया जाता था। याद करने अथवा कण्ठस्थ करने पर ही बल दिया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में, शिक्षा छात्र केन्द्रित हो गई हैं जिसके परिणामस्वरूप छात्र की रूचि, आवश्यकता, दृष्टिकोण, योग्यता आदि को ध्यान में रखकर ही शैक्षणिक क्रियाओं, कार्यक्रमों तथा अनुभवों अथवा अभ्यासों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकारशिक्षण की

विधियों एवं तकनीकों को सांस्कृतिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ प्रभावपूर्ण बनाती हैं।अनुशासन भी सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होता है। वर्तमान में बाल-केन्द्रित शिक्षा ने लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकारा है। इसलिए अनुशासन की धारणा भी एक साधन बन चुकी है। आत्म-अनुशासन भी एक मुख्य विचारधारा है। चूंकि पाठ्यक्रम का नियोजन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रकाश में ही किया जाता है। इसलिए पाठ्य-पुस्तकें लिखते समय पाठ्यक्रम द्वारा निर्धारित इन सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखा जाता है। केवल वही पुस्तकें मान्य मानी जाती है जो सांस्कृतिक मूल्यों, विचारों और नैतिकता के अनुकूल होती है।

अतः यह स्पष्ट है कि विद्यालय वास्तव में समाज का ही एक प्रारूप है। विद्यालय की समस्त क्रियाएँ एवं कार्यक्रम समाज के सांस्कृतिक विचारों एवं मूल्यों के अनुसार ही निर्धाथ्रत की जाती है जो कि विद्यालय की स्थापना और संगठन करती है। इसलिए विद्यालय समाज के सांस्कृतिक रूप से उत्साहन, प्रोत्साहन, परिवर्तन, सुधार एवं विकार प्रदान करने का केन्द्र है जो अपने भले एवं कल्याण के लिए ही विद्यालय की स्थापना करता है।अतः यह स्पष्ट है कि संस्कृतिक और शिक्षा में बहुत निकट सम्बन्ध है इसलिए अध्यापकों के लिए सांस्कृतिक समझ की बहुत आवश्यकताओं को भी स्वीकार करना चाहिए। शिक्षण समाज का एकमात्र ऐसा व्यक्तित्व होता है जो बालक को नागरिकता की शिक्षा सच्चे अर्थों में देता है। बालक जो कि अपने अन्दर पाश्विक प्रवृत्ति लिए होता है उसे शिक्षक ही मानव बनाने का दायित्व रखता है। विद्यालयों में शिक्षक, शिक्षण के माध्यम से ही छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन कर उसे समाजोपयोगी बनाता है।

निःसंदेह किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षण की केन्द्रीय भूमिका होती है। कोठारी कमीशन (1964) के अनुसार "भारत में भाग्य का निर्माण विद्यालयों की कक्षाओं में हो रहा है।" शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है और शिक्षक इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक है।अध्यापकों के युवा पीढ़ी को परमार्जित रूप से विकसित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभानी होती है। उन्हें यह एक तरफ परम्परागत संस्कृति को सम्भालने तथा दूसरी ओर वैज्ञानिक तालमेल से युक्त विकसित समाज में जीने का सबक सीखाना होता है। इसीलिए अध्यापकों को अपने समाज की समस्याओं और केन्द्रीय मुद्दों को समझने की आवश्यकता है। अध्यापकों को संरक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी करना होता हैं। इसके द्वारा संस्कृति की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की तरफ निरन्तरता प्रदान की जा सकती है। संरक्षक के साथ-साथ प्रगतिशील भूमिका के लिए अध्यापक को अपनी संस्कृति की पूर्ण सूझ होनी अति आवश्यक है।इसके अतिरिक्त एक अध्यापक को शिक्षा के लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए विस्तृत एवं विशाल सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का भी बोध होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हें विषय के सम्बन्ध में और लक्ष्यों के बारे में जागरूक होना चाहिए, परन्तु यह जागरूकता तक निरर्थक है जब वे शिक्षा के विशाल लक्ष्यों को उद्घाटित नहीं करता। इसलिए उन्हें विशिष्ट दार्शनिक बनने की आवश्यकता है। इसके परिणामस्वरूप वह शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को हल

करने योग्य बनेगा जो कि किसी विषय के संकुचित उद्देश्यों से कई अधिक महत्वपूर्ण है। अतः शिक्षक को आज के आधुनिकीकरण के युग में बहुत सचेत और जागरूक होना चाहिए। उनका विषय के प्रति व संस्कृति का ज्ञान बहुत विस्तृत होना चाहिए। वह अध्ययनशील तथा कर्तव्यों के प्रति समर्पित हो, यह आवश्यक है। उसका आधुनिकता में विश्वास हो और विभिन्न संस्कृतियों के आदान-प्रदान में सहयोग देने वाला हो। शिक्षक सिर्फ विषय विशेष को पढ़ाने के लिए केवल सिद्धान्तों तक सीमित न रहकर प्रयोगात्मक, अवलोकन और निरीक्षण के नए तरीकों को शिक्षण हेतु अपनाने में पूरी तरह से अभ्यस्त हो ताकि सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान के संग वह विद्यार्थियों में विश्व नागरिकता की भावना का विकास कर सकें।

अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक एवं कलात्मक पक्षों से संवारने में सहायता करती है, जिसका माध्यम बनती है शिक्षा। संस्कृति के लिए शिक्षा के द्वारा ऐसे ज्ञान का विस्तार किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को संवारने और मानवीय जीवन को उज्ज्वल बनाने सरीखे महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध किए जा सकें। शिक्षा के उद्देश्य के रूप में संस्कृति मनुष्य की कलात्मक बौद्धिकता को विकसित करेगी। यह उसे मानवीय विचारों के विभिन्न पक्षों अथवा रूपों को समझने योग्य बनाएगी। यह उसकी दृष्टि अथवा सोच को विकास प्रदान करेगी, उसकी रूचि का पोषण करेगी, उसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकृत व्यवहार करने योग्य बनाएगी। संस्कृति हमारी व्यवहारी में रहती है और इसी से परिलक्षित होती है। संस्कृति मानव जीवन को समृद्ध करती है तथा मनुष्य की शक्तियों को प्रशिक्षण देकर उन्हें आगे बढ़ाती है यानि शिक्षा के द्वारा संस्कृति का संवर्द्धन दिया जाता है। इसीलिए संस्कृति के विस्तार में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

*****

## संदर्भ


- कोठारी कमीशन. (1964). *कोठारी कमीशन रिपोर्ट.* भारत सरकार।
- कुलश्रेष्ठ, & हीरानन्दानी. (2006). "एजूकेशनल एप्टिट्यूड आफ पर्सपेक्टिव टीचर्स". *एडू ट्रैक, 5*(7).
- आहूजा, राम, & आहूजा, मुकेश. (2008). *समाजशास्त्र - विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य.* रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- शर्मा, जी.एल. (2005). *सामाजिक मुद्दे.* रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 43-50
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# शिक्षण प्रशिक्षण में सूक्ष्म शिक्षण और उसके निहितार्थ

संजीव कुमार पाठक
शोध छात्र
आई,ए,एस,ई,मानित विश्वविद्यालय
सरदारशहर-राजस्थान

***सार***

*सूक्ष्म शिक्षण एक शक्तिशाली और प्रभावी शिक्षण पद्धति के रूप में उभरा है, जो शिक्षक-शिक्षिकाओं को उनकी शिक्षण विधियों, कक्षा प्रबंधन और विद्यार्थियों के साथ संवाद में सुधार करने में मदद करता है। इसके इतिहास में कई बदलाव आए हैं, और आज यह एक सार्वभौमिक पद्धति बन चुका है, जो शिक्षक शिक्षा के प्रत्येक पहलू में योगदान करता है। सूक्ष्म शिक्षण के माध्यम से शिक्षक अपनी कमजोरियों को पहचान सकते हैं और अपने कौशल को बेहतर बना सकते हैं, जिससे शिक्षा के स्तर में लगातार सुधार हो रहा है।*

***कूटशब्द : सूक्ष्म शिक्षण, प्रशिक्षण, शिक्षक, प्रशिक्षु, पाठ योजना।***

## सूक्ष्म शिक्षण का इतिहास

सूक्ष्म शिक्षण (Microteaching) एक शिक्षण पद्धति है जिसे 1960 के दशक में डॉ. डोनाल्ड शार्प और उनके साथियों ने विकसित किया था। इसका उद्देश्य शिक्षकों को छोटे और विशिष्ट शिक्षण गतिविधियों के माध्यम से अपने शिक्षण कौशल को सुधारने में मदद करना था। सूक्ष्म शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य शिक्षकों को वास्तविक कक्षा में सामना करने वाले विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए तैयार करना था। इस पद्धति के माध्यम से शिक्षकों को अपनी शिक्षा विधियों, पाठ योजनाओं और विद्यार्थियों के साथ संवाद के तरीकों को सुधारने का अवसर मिलता है।

सूक्ष्म शिक्षण की शुरुआत स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया में हुई थी। वहां के शोधकर्ताओं ने यह देखा कि छात्र शिक्षक (teacher trainees) जब वास्तविक कक्षा में जाकर पढ़ाते हैं,

तो वे कई बार अनावश्यक तरीके से घबराहट या भ्रम का सामना करते हैं। इसलिए उन्होंने छोटे समूहों में शिक्षण की प्रक्रिया शुरू की ताकि शिक्षक अपना अनुभव बढ़ा सकें और अपने प्रदर्शन पर ध्यान केंद्रित कर सकें।

इस पद्धति में, शिक्षकों को सीमित समय, जैसे 5 से 10 मिनट, में एक विशिष्ट विषय पर शिक्षण देने के लिए कहा जाता है। इसका उद्देश्य था कि शिक्षक छोटी अवधि में प्रभावी तरीके से छात्रों को सिखा सकें। इस दौरान शिक्षकों को एक विशेष प्रकार के वीडियो रिकॉर्डिंग या निगरानी द्वारा अपने प्रदर्शन को देखने और सुधारने का अवसर भी मिलता है। यह पद्धति विशेष रूप से नए या प्रशिक्षु शिक्षकों के लिए उपयोगी साबित हुई, क्योंकि इसे छोटे-छोटे अभ्यास सत्रों में विभाजित किया जाता था, जिससे शिक्षकों को व्यक्तिगत रूप से सुधारने का अवसर मिलता था।

भारत में सूक्ष्म शिक्षण की शुरुआत 1970 के दशक में हुई। भारतीय शिक्षा प्रणाली में इसके लाभों को देखते हुए इसे तेजी से अपनाया गया। भारतीय शिक्षा मंत्रालय और विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे शिक्षकों के प्रशिक्षण के हिस्से के रूप में शामिल किया। सूक्ष्म शिक्षण के माध्यम से, शिक्षकों को केवल शिक्षण सामग्री को प्रस्तुत करने का तरीका नहीं सिखाया जाता, बल्कि उन्हें कक्षा प्रबंधन, विद्यार्थियों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखने, और सकारात्मक प्रेरणा देने के तरीकों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया में विशेष ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि शिक्षक अपनी शिक्षण विधियों में सुधार कर सकें और छात्रों को सिखाने के बेहतर तरीके सीख सकें। इसके माध्यम से, शिक्षक न केवल अपने कार्य को सही तरीके से करने के लिए प्रशिक्षित होते हैं, बल्कि यह उन्हें आत्ममूल्यांकन और सुधार की दिशा में भी प्रेरित करता है।

अंत में, सूक्ष्म शिक्षण ने शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण बदलाव लाया है। यह शिक्षकों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के साथ-साथ उनके शिक्षण कौशल में सुधार करने में भी मदद करता है। इस पद्धति के प्रभावी होने के कारण, इसे आजकल शिक्षा संस्थानों और शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में अपनाया गया है।

सूक्ष्म शिक्षण की पद्धति में धीरे-धीरे कई सुधार और बदलाव आए, जिससे यह शिक्षकों के प्रशिक्षण का एक प्रभावी और व्यापक तरीका बन गया। 1960 के दशक में जब सूक्ष्म शिक्षण की

शुरुआत हुई, तब इसे केवल एक छोटे समय के भीतर किसी विशेष विषय को शिक्षित करने के अभ्यास के रूप में देखा गया था। शुरुआती वर्षों में इसे केवल प्रशिक्षु शिक्षकों के प्रशिक्षण में इस्तेमाल किया गया था, लेकिन समय के साथ यह कक्षा के विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों के कौशल को बढ़ाने का एक आदर्श तरीका बन गया।

इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण यह था कि यह शिक्षकों को एक सुरक्षित और नियंत्रित वातावरण में अपना कौशल सुधारने का अवसर प्रदान करता था। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षक अपने शिक्षण प्रदर्शन को वीडियो रिकॉर्ड करते थे, जिससे वे अपने व्यवहार और शिक्षण शैली का आत्ममूल्यांकन कर सकते थे। इसके परिणामस्वरूप, शिक्षक अपनी गलतियों को समझ पाते थे और सुधार के लिए रणनीतियाँ अपना सकते थे। इसके साथ ही, यह पद्धति शिक्षक के आत्मविश्वास को भी बढ़ाती है, क्योंकि उन्हें छोटे समूहों में ही सही तरीके से अपना कार्य प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। भारत में सूक्ष्म शिक्षण का महत्व बढ़ता गया और 1970 के दशक में इसे भारतीय शिक्षा संस्थानों में प्रभावी तरीके से लागू किया गया।

भारत सरकार और विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे शिक्षक प्रशिक्षण के अनिवार्य हिस्से के रूप में स्वीकार किया। भारतीय संदर्भ में, सूक्ष्म शिक्षण ने शिक्षक-शिक्षिकाओं को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया, जिससे वे छात्रों की आवश्यकताओं और प्रतिक्रियाओं के अनुसार अपनी शिक्षण विधियों को अनुकूलित कर सकें। इसके अलावा, यह पद्धति शिक्षकों को कक्षा में समय प्रबंधन, संवाद कौशल और छात्रों के साथ बेहतर संबंध बनाने की दिशा में भी प्रशिक्षित करती है।

आजकल, सूक्ष्म शिक्षण का उपयोग न केवल शिक्षक प्रशिक्षण में बल्कि अध्यापकों की निरंतर व्यावसायिक विकास (CPD) में भी किया जाता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इसका उपयोग कर शिक्षक अपनी कमजोरियों को पहचानकर उन्हें दूर करने के लिए प्रयासरत रहते हैं। इसके अलावा, यह पद्धति शिक्षकों को छात्रों के सीखने के तरीके को समझने, उनकी प्रतिक्रियाओं पर ध्यान देने और पाठ्यक्रम की सामग्री को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में मदद करती है।

सूक्ष्म शिक्षण का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह तकनीकी और डिजिटल बदलावों के साथ भी सामंजस्य बैठा रहा है। आजकल वीडियो-आधारित और ऑनलाइन सूक्ष्म शिक्षण सत्रों का उपयोग किया जा रहा है, जिससे शिक्षक कहीं भी और कभी भी अपना कौशल सुधार सकते हैं। डिजिटल

माध्यमों का उपयोग शिक्षा को अधिक लचीला और सुलभ बनाता है, जिससे शिक्षक अपनी गति से सीख सकते हैं और सुधार सकते हैं।

अंततः, सूक्ष्म शिक्षण ने शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया है। यह एक व्यावहारिक और सशक्त तरीका है, जिसके माध्यम से शिक्षक अपने कक्षा प्रबंधन और शिक्षण शैली को सुधार सकते हैं। इसके प्रभावी उपयोग से शिक्षकों का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अपनी कक्षा में छात्रों को बेहतर तरीके से सिखाने में सक्षम होते हैं।

सूक्ष्म शिक्षण की सफलता के बाद, इसे न केवल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में बल्कि विभिन्न शिक्षा प्रणाली और कार्यक्रमों में भी प्रभावी तरीके से लागू किया गया। समय के साथ सूक्ष्म शिक्षण के उद्देश्यों और इसके इस्तेमाल के तरीके में कई महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। प्रारंभ में इसे सिर्फ एक छोटे समय में शिक्षण कार्य करने का अभ्यास माना जाता था, लेकिन अब यह अधिक व्यापक और गहन प्रशिक्षण विधि बन चुका है, जो शिक्षकों के विभिन्न कौशलों को विकसित करने में मदद करता है।

इसके अतिरिक्त, सूक्ष्म शिक्षण को कक्षा में बेहतर प्रबंधन, छात्रों के प्रति अधिक संवेदनशीलता और उनकी शिक्षा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है। कक्षा में शिक्षक की भूमिका न केवल पाठ पढ़ाने तक सीमित होती है, बल्कि वह छात्रों की भागीदारी को बढ़ाने, उन्हें प्रेरित करने और उनकी समस्याओं को हल करने का भी कार्य करता है। सूक्ष्म शिक्षण ने इन पहलुओं को सही तरीके से संबोधित किया है, जिससे शिक्षक अपनी शिक्षण शैली को लगातार सुधार सकते हैं और शिक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को और मजबूत कर सकते हैं।

इसके अलावा, सूक्ष्म शिक्षण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है इसका मूल्यांकन। पहले जहां शिक्षक अपनी कक्षा में दिए गए पाठ के बाद मूल्यांकन करने का समय पाते थे, वहीं सूक्ष्म शिक्षण में शिक्षक तुरंत अपनी कक्षा का मूल्यांकन करते हैं। वीडियो रिकॉर्डिंग के माध्यम से शिक्षकों को अपना प्रदर्शन देखने का अवसर मिलता है, जिससे वे अपनी कमजोरियों और मजबूती को पहचानने में सक्षम होते हैं। इसके अलावा, सहकर्मियों और प्रशिक्षकों से प्राप्त फीडबैक के माध्यम से शिक्षक अपने प्रदर्शन में सुधार करने के लिए ठोस कदम उठा सकते हैं।

सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया में एक और महत्वपूर्ण पहलू है – फीडबैक और प्रतिक्रिया। यह केवल एकतरफा शिक्षण पद्धति नहीं है, बल्कि यह एक प्रतिक्रिया और सुधार की प्रक्रिया है। शिक्षक और छात्र दोनों ही इस प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं, और इसमें सुधार के लिए दोनों की सक्रिय भागीदारी होती है। जब शिक्षक अपने शिक्षण सत्र का मूल्यांकन करते हैं, तो वे यह जान पाते हैं कि उनके छात्रों ने किस प्रकार से सामग्री को समझा और कहाँ वे अधिक ध्यान दे सकते हैं।

इसके प्रभावी परिणामों ने सूक्ष्म शिक्षण को शिक्षा में सुधार के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में स्थापित किया है। अब यह पद्धति न केवल प्रशिक्षु शिक्षकों, बल्कि पेशेवर शिक्षकों के लिए भी एक मूल्यवान साधन बन गई है, क्योंकि यह उन्हें अपने शिक्षण कौशल को लगातार बेहतर करने का अवसर देती है।

आजकल, तकनीकी विकास के साथ सूक्ष्म शिक्षण में भी परिवर्तन आए हैं। डिजिटल प्लेटफार्म और ऑनलाइन शिक्षण के जरिए शिक्षक अब सूक्ष्म शिक्षण सत्रों को कहीं भी और कभी भी कर सकते हैं। ऑनलाइन माध्यमों का उपयोग शिक्षकों को लचीलापन देता है और उन्हें अपने कौशल को और बेहतर बनाने का अवसर प्रदान करता है। इसके अलावा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और डेटा एनालिटिक्स के उपयोग से सूक्ष्म शिक्षण को और अधिक व्यक्तिगत और प्रभावी बनाने की दिशा में कदम बढ़ाए जा रहे हैं।

सूक्ष्म शिक्षण शिक्षक प्रशिक्षणार्थियो के प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक अनिवार्य एवं प्रभावी घटक हैं। एलन एवं उनके सहयोगियों द्वारा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में 1961 में प्रारम्भ किया गया यह प्रत्यय आज सम्पूर्ण विश्व में शिक्षकप्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा अंगीका-र किया गया है। वास्तव में सूक्ष्म शिक्षण शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को वास्तविक कक्षाओं में जाने से पूर्व एक पूर्वाभ्यास हैं। इस पूर्वाभ्यास की तुलना हम नर्स का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे प्रशिक्षणार्थियों की उस गतिविधि से कर सकते हैं, जिसमें उन्हें रबर या प्लास्टिक के नमूनो पर इंजेक्शन लगाने का अभ्यास कराया जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म शिक्षण की तुलना चिकित्सा शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों से भी किया जा सकता हैं; जिन्हें किसी रोगी मनुष्य की शल्यक्रिया करने से पहले मृत मानव शरीर व जानवरों पर अभ्यास कराया जाता है। इसी प्रकार सशस्त्र सेनाएं भी अपना अभ्यास छद्म युद्धों के माध्यम से करके स्वयं को युद्ध की परिस्थतियों के लिए तैयार करती है। यहां पर यह तथ्य ध्यान देने योग्य हैं कि किसी राष्ट्र के विकास में शिक्षक की भूमिका

नर्स, डाक्टर या सेना के जवानों से कतई कम नहीं होती है। अपितु शिक्षक का कार्य कहीं इससे अधिक जटिल व गुरूतर है। अतः हम कालेज शिक्षा या स्कूली शिक्षा प्राप्त कर आये शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को सीधे तौर पर कक्षाओं में नहीं भेज सकते जहाँ देश का भविष्य निर्मित हो रहा है। सूक्ष्म शिक्षण जैसी आवश्यक गतिविधि से वंचित रख कर प्रशिक्षणार्थियों को सीधे ही कक्षाओं में भेजना उतना ही घातक सिद्ध हो सकता है जितना की बिना पूर्वाभ्यास के सैनिकों को युद्ध के मैदान में भेजना या नर्स और मेडिकल विद्यार्थियों को अस्पताल में भेजना।उक्त बातों का सारांश यह है कि सूक्ष्म शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की एक नितान्त ही आवश्यक गतिविधि है। इसके सकारात्मक परिणाम डंबतव जमंबीपदह के दौरान देखे जा सकते हैं। जब सूक्ष्म शिक्षण किए हुए प्रशिक्षणार्थी अन्य प्रशिक्षणार्थियों से बेहतर शिक्षण कार्य करते हैं। सूक्ष्म शिक्षण के प्रभावी निष्पादन हेतु कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं, जो निम्नवत हैं-

1. सूक्ष्म शिक्षण में अभ्यास किये जाने वाले कौशलों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। राजस्थान में दोनों शिक्षण विषयों के 5-5 कौशल ही लिये जाते हैं वह भी प्रशिक्षक अपनी सुविधानुसार चयन करते है। जबकि कम से कम दोनों विषयों में 10-10 कौशलों का शिक्षण कराया जाना चाहिए।

2. यदि दोनों शिक्षण विषयों में 20 सूक्ष्म पाठ कराये जाते हैं तो उनमें से 10 की प्रस्तुती वास्तविक कक्षाओं में तथा 10 सहपाठी समूहों में कराये जाने चाहिए क्योंकि समस्त पाठ सहपाठी समूह में कराने से वांछित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती। सहपाठी समूह अनर्गल तर्क वितर्क भी करने लगता है।

3. राजस्थान के अधिकांश प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सूक्ष्म पाठ योजना की डायरी में 20-22 पृष्ठों पर प्रारूप मुद्रित होता हैं। इस प्रकार मुद्रित डायरी में सूक्ष्म शिक्षण का अभ्यास कैसे कराया जा सकता हैं ?सूक्ष्म शिक्षण के सभी चक्र भी ऐसी पुस्तिकाओं से पूरित नहीं किये जा सकते हैं ऐसी डायरियों के प्रयोग से बचना चाहिये।

4. ET लैब की व्यवस्था प्रशिक्षण संस्थानो में अनिवार्य रूप से तथा मूर्त रूप में होना चाहिए यदि प्रस्तुत किये जा रहे सूक्ष्म पाठ का वीडियो रिकार्डिंग संभव न हो तो कम से कम टेप रिकार्डिंग तो कराना ही चाहिए। बेहतर निष्पादन हेतु वीडियो रिकार्डिंग सर्वथा उपयुक्त रहता हैं।

5. सूक्ष्म पाठ योजना के समस्त पाठ विषय विशेषज्ञ प्रशिक्षकों द्वारा अनुमोदित होने चाहिए।

6. प्रशिक्षण संस्थानों में एक ही विषय के कई शिक्षक होने की बजाय आंवटित विषयों के अलगअलग प्रशिक्षक होने चाहिए।-

7. एनसीटीई जैसी संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रशिक्षण संस्थाओं के भौतिक संसाधन सिर्फ दिखावटी हैं या प्रांसगिक भी हैं।
8. शिक्षक प्रशिक्षकों को भी चाहिए कि सूक्ष्म शिक्षण पर आयोजित सेमिनारो, कार्यशालाओं, शिविरों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर बदलती परिस्थितियों के अनुसार चलें जिससें प्रशिक्षणर्थियों का बेहतर मार्ग दर्शन हो सके।

9. एक बार में एक ही कौशल पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

10. सूक्ष्म शिक्षण के पश्चात पृष्ठ पोषण देने हेतु विचार विमर्श में प्रशिक्षणार्थियों के हतोत्साहित होने की संभावनायें रहती है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए सकारात्मक पुनर्बलन हेतु पृष्ठ पोषण दिया जाना चाहिए।

11. प्रस्तावना, प्रश्न, पुनर्बलन, व्याख्या, श्यामपट्ट, उद्दीपक परिवर्तन जैसे कौशलों पर विशेष ध्यान दिया जाये क्योंकि अन्य कौशलों के लिये ये आधार का कार्य करते है।

12. अंधिकाश प्रशिक्षण संस्थान पाठ प्रस्तावना कौशल से सूक्ष्म शिक्षण का प्रारम्भ करते है; जबकि व्यावहारिक रूप में यदि प्रश्न कौशल से सूक्ष्म शिक्षण अभ्यास का कार्य प्रारम्भ किया जाए तो ज्यादा प्रभावी होगा।

13. प्रत्येक कौशल पर आधारित एक आदर्श पाठ का प्रस्तुतीकरण शिक्षक प्रशिक्षक द्वारा किया जाना चाहिए।

*****

**संदर्भ:**


- शर्मा, र. (2003). *सूक्ष्म शिक्षण: शिक्षक प्रशिक्षण की एक नई तकनीक.* नई दिल्ली: डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस।
- एलेन, डब्ल्यू., & रयान, के. (1969). *सूक्ष्म शिक्षण.* रीडिंग, MA: ऐडिसन-वेस्ली।
- मिलर, एल. (2003). *शिक्षक शिक्षा में सूक्ष्म शिक्षण.* न्यूयॉर्क: राउटलेज।
- भाटिया, के. के., & भाटिया, एस. (2007). *शिक्षण और प्रशिक्षण की तकनीकें.* लुधियाना: तंदन पब्लिकेशंस।
- शर्मा, जी. एल. (2010). *शिक्षक शिक्षा और सूक्ष्म शिक्षण.* जयपुर: रावत पब्लिकेशंस।
- भाटिया, बी. डी., & भाटिया, एन. (2015). *नवीनतम शिक्षण तकनीकें.* नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स।

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 51-60
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

अनुभव

# कोविड में दिल्ली में फंसी जिंदगी और आपबीती

राकेश विश्वकर्मा, शोध छात्र
बनारस हिन्दू विशविद्यालय

**कोविड-19 के दौरान दिल्ली में फंसा होना, मेरे जीवन का एक अनूठा अनुभव था। यह समय न केवल बाहरी दुनिया को बदलने वाला था, बल्कि यह मेरे भीतर के बदलाव का समय भी था। इस महामारी ने मुझे यह सिखाया कि जीवन में अनिश्चितताएँ हमेशा रहेंगी, लेकिन धैर्य, विश्वास, और सहनशक्ति से हम किसी भी संकट का सामना कर सकते हैं।**

मई 2020 का महीना था, और भारत में कोविड-19 का संकट अभी भी अपने चरम पर था। इस महामारी ने न केवल हमारे देश को, बल्कि पूरी दुनिया को अपनी चपेट में लिया था। दिल्ली, जो हमेशा से अपने व्यस्त जीवन, रंगीन बाजारों, और भीड़-भाड़ के लिए जानी जाती थी, अब सुनसान और वीरान लगने लगी थी। एक ओर जहाँ लोग अपने-अपने घरों में बंद थे, वहीं मैं दिल्ली में फंसा हुआ था, और यह अनुभव मेरे लिए एक असाधारण और डरावना समय था।

यह यात्रा मेरे लिए विशेष थी, क्योंकि मैं कुछ दिन के लिए दिल्ली आया था और जब मुझे लौटने का समय आया, तो कोविड-19 की स्थिति ने सब कुछ बदल दिया। सरकार द्वारा घोषित लॉकडाउन और यात्रा प्रतिबंधों के कारण मैं दिल्ली में फंस गया था। उस वक्त, दिल्ली की सड़कों पर डर और अनिश्चितता का माहौल था। हर जगह सन्नाटा था, बाजारों में ताला पड़ा था, और ट्रेनों, बसों की आवाज़ अब कहीं सुनाई नहीं देती थी। बस शहर की चुप्पी और डरावने दृश्य थे।

दिल्ली पहुंचने के बाद, 24 मार्च 2020 को अचानक लॉकडाउन की घोषणा हुई। यह अचानक और अप्रत्याशित था। उस समय मेरे पास कोई योजना नहीं थी। मुझे यह समझ में नहीं आ रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए। ट्रेनें और बसें रद्द हो चुकी थीं, और विमानों की आवाजें भी बंद हो गई थीं। चारों ओर एक अजीब सी शांति छाई हुई थी। मुझे यह ख्याल आ रहा था कि शायद यह स्थिति कुछ ही समय में सामान्य हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

दिल्ली के विभिन्न हिस्सों में कोविड-19 के मामलों में वृद्धि होने लगी, और सरकार ने जल्द ही कड़े कदम उठाए। मार्केट्स बंद हो गए, दुकानें और छोटे व्यापार प्रभावित हुए। लोग घरों में बंद हो गए थे, और हर किसी के चेहरे पर डर और चिंता थी। हर किसी का यही सवाल था – "यह कब खत्म होगा?"

**स्वास्थ्य संकट और अनिश्चितता**

एक तरफ दिल्ली में संक्रमण तेजी से बढ़ रहा था, वहीं दूसरी तरफ यह डर भी सता रहा था कि कहीं मैं या मेरे आसपास के लोग भी इस वायरस का शिकार न हो जाएं। मेरे पास पैनिक खरीदारी करने का समय नहीं था, और कई दिनों तक मैं अपने छोटे से किराए के कमरे में अकेला ही बंद रहा। टीवी और समाचार पत्रों पर कोविड-19 की खबरें बढ़ती जा रही थीं, और सरकार के निर्देशों के अनुसार सभी को सोशल डिस्टेंसिंग और स्वच्छता बनाए रखने की सख्त सलाह दी जा रही थी। दिल्ली के अस्पतालों में भी मरीजों की भारी भीड़ थी। ऑक्सीजन और वेंटिलेटर की कमी होने लगी थी, और डॉक्टर और नर्स अपनी जान की बाजी लगाकर मरीजों का इलाज कर रहे थे। यह सब देख कर मन में एक अजीब सा भय समा गया था। बार-बार ख्याल आता कि अगर मैं भी संक्रमित हो गया, तो किससे मदद मांगूंगा? लॉकडाउन के पहले कुछ दिनों तक, मेरे पास किराने का सामान था, लेकिन समय के साथ वह भी खत्म होने लगा। बाजारों में सब कुछ बंद था, और सोशल डिस्टेंसिंग के कारण बाहर निकलना भी सुरक्षित नहीं लगता था। कई बार सोचा कि क्या मुझे गेट के बाहर जाकर भीड़ में शामिल होना चाहिए, लेकिन डर हमेशा साथ था। कुछ दिन बाद, मुझे स्थानीय दुकानों से कुछ जरूरी सामान मिल पाया, लेकिन यह बहुत कठिन था। जब तक चीजें सही ढंग से उपलब्ध हुईं, तब तक स्थिति और भी गंभीर हो गई थी। कोविड-19 के दौरान अकेले रहना और फंसा हुआ महसूस करना मानसिक रूप से बहुत कठिन था। दिल्ली में इतने बड़े शहर में, जहां पहले जीवन हर वक्त गति में रहता था, वहां अचानक यह सन्नाटा और अकेलापन बहुत भारी महसूस हुआ। लॉकडाउन के कारण लोगों का बाहर निकलना और एक-दूसरे से मिलना मुश्किल हो गया था। परिवार और दोस्तों से केवल फोन पर ही बात हो सकती थी। यह अकेलापन बहुत खलने लगा। कई बार तो लगता था कि इस स्थिति से जल्दी बाहर निकलना असंभव है।

लेकिन यह अकेलापन भी एक नया अनुभव था, जिसने मुझे आत्ममूल्यांकन और आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को महसूस कराया। मैंने कुछ नए शौक अपनाए, जैसे किताबें पढ़ना, पुरानी फिल्मों को देखना, और ऑनलाइन कुछ नए कोर्सेज करना। इसने मेरे मानसिक तनाव को थोड़ी राहत दी, लेकिन यह अकेलापन मुझे हमेशा याद रहेगा। जैसे-जैसे दिन गुजरते गए, मुझे यह समझ में आ गया कि इस महामारी का अंत जल्दी नहीं होगा। दिल्ली में फंसा हुआ मैं लगातार परिवहन के तरीकों के बारे में सोचता था। आखिरकार, दिल्ली में मेट्रो और बस सेवाएं बंद हो गईं, और ट्रेनों में भी यात्रा करना मुश्किल था। सरकार द्वारा उठाए गए कड़े कदमों के बावजूद, आवश्यक सेवाएं और आपूर्ति कनेक्शन बनी रही।

मुझे तब समझ में आया कि महामारी सिर्फ एक स्वास्थ्य संकट नहीं, बल्कि समाज के सभी पहलुओं में एक भयंकर व्यवधान उत्पन्न कर सकती है। यह शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा, और रोज़मर्रा की ज़िंदगी को प्रभावित करता है। मेरे लिए दिल्ली में फंसा हुआ यह अनुभव असाधारण था, लेकिन इसने मुझे जीवन के प्रति एक नई समझ दी। महामारी ने मुझे यह सिखाया कि कैसे संकटों में धैर्य और आत्मविश्वास बनाए रखा जा सकता है। लॉकडाउन के दौरान, जब सबकुछ अस्थिर था, तब मुझे समझ में आया कि जीवन में कितनी अनिश्चितताएँ हैं, और हमें हर परिस्थिति का सामना करते हुए जीना सीखना चाहिए। अगस्त 2020 के अंत तक, स्थिति कुछ बेहतर होने लगी थी। दिल्ली में कोविड-19 के मामलों में कुछ कमी आई और सरकार ने धीरे-धीरे कुछ प्रतिबंध हटाए। आखिरकार, मैं दिल्ली से अपने घर लौटने में सक्षम हुआ, लेकिन इस अनुभव ने मुझे जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया। कोविड-19 ने हमें यह सिखाया कि किसी भी स्थिति में उम्मीद कभी खत्म नहीं होनी चाहिए। यह संकट एक दिन समाप्त होगा, और हमें फिर से अपने जीवन को सामान्य रूप से जीने का अवसर मिलेगा।

कोविड-19 ने मेरी जिंदगी को पूरी तरह से बदल कर रख दिया था। जब तक मुझे यह एहसास हुआ कि यह संकट सिर्फ कुछ दिनों का नहीं था, तब तक बहुत समय निकल चुका था। दिल्ली में फंसी हुई स्थिति को समझने के बाद, मैंने धीरे-धीरे खुद को मानसिक रूप से तैयार किया कि शायद यह महामारी बहुत समय तक चलेगी और मुझे इस अनिश्चितता से निपटने के लिए बहुत धैर्य की आवश्यकता होगी। इस समय की घटनाएँ मुझे पूरी तरह से जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण देने वाली थीं। लॉकडाउन के दौरान, जब शहर की गलियाँ सुनसान थीं और हर कोई घर पर था, तो मैंने महसूस किया कि हम अक्सर जीवन के छोटे-छोटे पहलुओं को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। मेरे लिए दिल्ली में अकेले रहने के दौरान यह समय बहुत शिक्षाप्रद था। मैं सोचता था कि हम कितने व्यस्त हो जाते हैं, फिर भी कभी इन क्षणों का आनंद नहीं ले पाते। घर से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था, इसलिए मैंने समय का सदुपयोग करने की पूरी कोशिश की। सुबह-सुबह की ताजगी, घर के बाहर की हलचल, पक्षियों की चहचहाहट, और इन सबकी अहमियत का अहसास इस समय हुआ। कभी भी काम की व्यस्तता में हम यह सब चीजें नज़रअंदाज़ कर देते हैं। मुझे यह समझ में आया कि जीवन में सुख-शांति पाने के लिए हमेशा किसी खास स्थान या समय का इंतजार नहीं करना चाहिए, बल्कि हमें अपने हर दिन की साधारण खुशियों में ही सुख तलाशना चाहिए।

लॉकडाउन के कारण स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय सभी बंद हो गए थे। इस कठिन समय में शिक्षा को जारी रखने के लिए ऑनलाइन शिक्षा का रास्ता अपनाया गया। शुरू में मुझे यह विचार भी अजीब सा लगा था, क्योंकि मेरी आदत किसी शिक्षक से व्यक्तिगत रूप से बात करने की थी। लेकिन समय के साथ, मैंने इस नई व्यवस्था को अपनाया। मुझे यह महसूस हुआ कि डिजिटल माध्यमों से शिक्षा लेने का अपना एक अलग अनुभव था। कभी-कभी तकनीकी समस्याएँ आती थीं, लेकिन फिर भी यह एक नई दिशा थी, जिसने मुझे अपने अध्ययन के प्रति एक नया दृष्टिकोण दिया। ऑनलाइन शिक्षा ने मुझे यह सिखाया कि कभी भी किसी चुनौती से घबराना नहीं चाहिए। न केवल शिक्षा, बल्कि बहुत से क्षेत्रों में डिजिटल परिवर्तन आ चुका था। इसने मुझे यह समझने में मदद की कि जीवन में बदलते हुए समय के साथ हमें अपनी सोच और कार्यप्रणाली को भी बदलने की आवश्यकता होती है। दिल्ली में कोविड-19 के मामलों में बढ़ोतरी के बाद, मैं और मेरे जैसे अन्य लोग हमेशा सतर्क रहते थे।

मास्क पहनना, हाथ धोना और सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना अनिवार्य हो गया था। हालांकि, मुझे यह भी महसूस हुआ कि इस वायरस ने लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाई है। हम में से कई लोग पहले अपनी सेहत को नजरअंदाज कर देते थे, लेकिन अब हम यह समझने लगे थे कि स्वस्थ रहना कितनी बड़ी प्राथमिकता है। स्वास्थ्य का महत्व समझने के साथ-साथ, मैंने मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्व देना शुरू किया। इस समय में, मानसिक तनाव और चिंता आम हो गई थी, और मानसिक स्वास्थ्य की अहमियत भी समझ में आई। मैंने ध्यान, योग, और शारीरिक गतिविधियाँ अपनाई, जिससे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य, बल्कि मानसिक शांति भी मिल पाई। कोविड-19 ने हमें यह सिखाया कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों का समान महत्व है। दिल्ली, जो पहले भीड़-भाड़, शोरगुल, और हर समय व्यस्त रहने वाले शहर के रूप में जानी जाती थी, लॉकडाउन के दौरान एक सन्नाटे में बदल गई थी। सड़कों पर वाहन कम थे, मार्केट्स में सन्नाटा था, और दिल्ली का वो परिचित माहौल अब कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। दिल्ली की पहचान ही इसकी हलचल और ऊर्जा थी, लेकिन कोविड-19 के कारण इस सारी ऊर्जा का गायब होना, एक अजीब अनुभव था।

हालांकि, दिल्ली का यह सन्नाटा एक नई तरह की शांति और आत्मनिरीक्षण का समय बन गया। मैंने महसूस किया कि हम अक्सर इस शोर में अपनी सच्ची भावनाओं और विचारों को दबा देते हैं। लॉकडाउन के दौरान, यह सन्नाटा मुझे अपने भीतर की आवाज़ सुनने का मौका दे रहा था। दिल्ली में लॉकडाउन के दौरान, मैंने एक नई तरह की एकजुटता देखी। लोगों ने एक-दूसरे की मदद करने के लिए आगे आकर समुदायों में सहयोग देना शुरू किया। इस संकट के समय में, कई स्वयंसेवी संगठन, एनजीओ, और लोग संक्रमितों, जरूरतमंदों, और मजदूरों की मदद के लिए सामने आए। राशन, दवाइयाँ, और अन्य जरूरी सामान वितरित करने के लिए मदद के हाथ बढ़े। यह समाज की सहानुभूति और एकता को दिखाता था।

इसी समय मुझे यह एहसास हुआ कि इस महामारी ने हमें यह सिखाया कि व्यक्तिगत भलाई से ज्यादा, समाज की भलाई महत्वपूर्ण है। आज़ादी, सुरक्षा, और समृद्धि के लिए सामूहिक सहयोग की आवश्यकता होती है। लॉकडाउन और सोशल डिस्टेंसिंग के बावजूद, लोगों ने एक-दूसरे से जुड़ने के नए तरीके ढूंढे और इसने समाज को एक नई दिशा में प्रेरित किया। दिल्ली का अनुभव मेरे लिए एक जीवन पाठ की तरह था। इसने मुझे अपने जीवन की असलियत को समझने का मौका दिया, अपनी प्राथमिकताओं को पुनः निर्धारित करने का अवसर दिया, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह सिखाई कि जीवन में खुशी और शांति बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि हमारे अपने दृष्टिकोण से आती है। कोविड-19 ने हम सभी को यह सिखाया कि हम किसी भी स्थिति में उम्मीद नहीं खो सकते और एकजुट होकर किसी भी संकट से उबर सकते हैं।

कोविड-19 के संकट ने हमारी ज़िंदगी की धारा को अचानक मोड़ दिया। दिल्ली में फंसा हुआ मैं अब कई महीनों से इस अभूतपूर्व स्थिति का सामना कर रहा था। लॉकडाउन की शुरुआत से लेकर संक्रमण की स्थिति तक, यह अनुभव मेरे जीवन के सबसे कठिन समयों में से एक था। लेकिन इस पूरे दौर ने मुझे न केवल दुनिया को, बल्कि अपने आप को समझने का मौका भी दिया।

**नई आदतों और जीवनशैली का निर्माण**

लॉकडाउन के दौरान मेरा दिनचर्या पूरी तरह से बदल गया था। पहले जहां मैं सुबह जल्दी उठकर ऑफिस जाता था, अब मेरा दिन घर पर ही शुरू होता था। एक ओर जहां लॉकडाउन ने हमें बहुत सी स्वतंत्रता से वंचित किया, वहीं दूसरी ओर इसने हमें अपनी पुरानी आदतों पर पुनर्विचार करने का समय दिया। सुबह-सुबह की सैर, अपने मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्यान, योग और किताबें पढ़ने का समय—यह सब मुझे पहले कभी इस तरह से अनुभव नहीं हुआ था। इसने मुझे यह महसूस कराया कि हम जीवन के छोटे-छोटे सुखों को कितना नज़रअंदाज़ करते हैं। पहले काम की व्यस्तता और अन्य जिम्मेदारियाँ हमें अपने लिए समय निकालने की अनुमति नहीं देती थीं। लॉकडाउन ने मुझे यह सिखाया कि जीवन को हर पहलू में संतुलित रूप से जीने का तरीका होना चाहिए। अब, मैं रोज़ाना ध्यान करता हूँ और मानसिक शांति के लिए कुछ समय निकालता हूँ। यह मुझे न केवल शारीरिक रूप से सशक्त बनाता है, बल्कि मानसिक रूप से भी संतुलित रखता है। कोविड-19 के दौरान दिल्ली में फंसा होना, इसने मुझे परिवार के महत्व को और गहरे से समझाया। जब हम व्यस्त जीवन जी रहे होते हैं, तो कभी-कभी हम परिवार के साथ समय नहीं बिता पाते। लेकिन अब, जब लॉकडाउन के कारण बाहर जाना असंभव था, तो मैंने पाया कि परिवार के साथ समय बिताना सबसे बड़ी राहत है। फोन कॉल्स, वीडियो चैट्स, और ऑनलाइन प्लेटफार्म्स के माध्यम से अपने परिवार के साथ संपर्क में रहकर यह एहसास हुआ कि अकेलेपन और संकट के समय में परिवार का साथ कितना ज़रूरी है। कोविड-19 के दौरान मुझे यह भी महसूस हुआ कि हमें परिवार के सदस्यों के साथ नियमित रूप से संवाद करना चाहिए और उनके साथ बिताए गए समय को संजीदगी से लेना चाहिए। यह समय संकट का हो सकता है, लेकिन इसने मुझे जीवन के महत्वपूर्ण रिश्तों को और गहरा करने का अवसर दिया। लॉकडाउन और कोविड-19 के असर के दौरान दिल्ली में जो दृश्य मैंने देखे, उन्होंने समाज की असमानताओं को और स्पष्ट रूप से उजागर किया। एक ओर जहाँ अमीर और मध्यवर्गीय लोग अपने घरों में आराम से बंद थे, वहीं गरीब और मजदूर वर्ग के लोग अपने जीवनयापन के लिए संघर्ष कर रहे थे। सड़कों पर पलायन करते हुए श्रमिकों की लंबी कतारें, वे लोग जिन्हें ना केवल काम मिला, बल्कि भोजन भी मिलना मुश्किल था, यह दृश्य बहुत ही भयावह था। हालांकि, कई स्वयंसेवी संगठन और सरकारी एजेंसियाँ इस स्थिति में गरीबों की मदद के लिए सामने आईं, लेकिन यह स्पष्ट था कि हम किसी भी संकट में असमानताओं को पूरी तरह से खत्म नहीं कर सकते। इस महामारी ने यह सिद्ध कर दिया कि समाज में समानता की आवश्यकता है, और हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी स्थिति में किसी को भी भूखा या मदद के बिना न छोड़ दिया जाए। कोविड-19 के दौरान दिल्ली में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति को लेकर कई सवाल खड़े हुए। अस्पतालों में बिस्तरों की कमी, ऑक्सीजन की आपूर्ति, और दवाओं की भारी कमी जैसी समस्याएँ सामने आईं। जिन परिवारों के पास स्वास्थ्य सेवाओं का खर्च उठाने का संसाधन था, वे जल्दी इलाज पा रहे थे, लेकिन जिनके पास संसाधन नहीं थे, उनके लिए यह समय और भी कठिन था। दिल्ली के कई अस्पतालों में भर्ती होने के लिए लंबी कतारें लगती थीं और कई बार तो लोगों को समय पर इलाज नहीं मिल पाता था। ऐसे समय में सरकारी और निजी अस्पतालों को संसाधनों के प्रबंधन में कठिनाइयाँ आ रही थीं। डॉक्टर्स और नर्सेस दिन-रात काम करते थे, लेकिन यह स्पष्ट था कि स्वास्थ्य सुविधाओं का दबाव बहुत बढ़ चुका था।

इस संकट ने हमें यह सिखाया कि हमें स्वास्थ्य सुविधाओं के सुधार की दिशा में कई कदम उठाने होंगे। हमें न केवल प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ करना होगा, बल्कि यह सुनिश्चित करना होगा कि देश की प्रत्येक जनता को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलें, चाहे वह किसी भी सामाजिक-आर्थिक वर्ग से संबंधित हो। लॉकडाउन के कारण मैं जिस किराए के कमरे में रुका था, वहाँ रहकर मुझे यह एहसास हुआ कि बहुत से लोग अपनी जीवनशैली को बदलने में कितने संघर्ष कर रहे हैं। बड़े शहरों में जहाँ रहने की लागत काफी अधिक होती है, वहाँ कई लोग छोटे कमरे, कम संसाधनों और सुविधाओं में रहते हैं। कोविड-19 के इस संकट ने उन लोगों को और भी मुश्किल में डाल दिया, जिनके पास सही खानपान, स्वास्थ्य सेवाएँ, और मानसिक शांति का अभाव था। मैंने देखा कि मानसिक स्वास्थ्य इस समय में बहुत प्रभावित हो रहा था। अकेलापन, चिंता, और अनिश्चितता ने कई लोगों को मानसिक तनाव की स्थिति में डाल दिया। इस संकट के दौरान मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को समझने की आवश्यकता बहुत ज़रूरी हो गई। हमें मानसिक स्वास्थ्य को लेकर और अधिक जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है, ताकि किसी भी संकट या महामारी के समय हम अपनी मानसिक स्थिति को संभाल सकें। कोविड-19 के इस अनुभव ने मेरे जीवन को काफी बदल दिया। कठिनाइयाँ जरूर आईं, लेकिन इसने हमें यह भी सिखाया कि उम्मीद कभी नहीं छोड़नी चाहिए। इस महामारी ने हमें एकजुट होने, सहानुभूति दिखाने और एक-दूसरे की मदद करने का महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाया। हम सभी को इस महामारी से यह संदेश मिला कि संकट चाहे जैसा हो, अगर हम मिलकर उसका सामना करें, तो कोई भी कठिनाई बड़ी नहीं होती। दिल्ली में फंसे रहने के दौरान इस स्थिति ने मुझे आत्म-निर्भर बनने, अपनी प्राथमिकताओं को सही ढंग से पहचानने और जीवन के महत्व को समझने का अवसर दिया। संकट के बाद, जब सब कुछ फिर से सामान्य होगा, तो हम सभी को यह याद रखना होगा कि संकट के समय में मानवता और मदद सबसे बड़ी ताकत होती है। इस पूरे अनुभव ने मुझे यह सिखाया कि जीवन में आने वाली कठिनाइयों से डरने के बजाय, हमें उनका सामना करना चाहिए और हर कठिनाई को एक अवसर की तरह देखना चाहिए। कोविड-19 ने मुझे यही सिखाया कि हर संकट के बाद, एक नई सुबह होती है, जिसमें उम्मीद की एक नई किरण होती है। कोविड-19 महामारी ने पूरी दुनिया को एक नए संकट से रूबरू कराया, और हर किसी की जिंदगी को नए तरीके से प्रभावित किया। जब से लॉकडाउन घोषित हुआ, तब से मैं दिल्ली में फंसा हुआ था। यह अनुभव न केवल मेरे लिए, बल्कि मेरे जैसे लाखों अन्य लोगों के लिए एक बहुत बड़ा बदलाव था। दिल्ली जैसे महानगर में रहकर इस संकट से जूझते हुए मैंने जो महसूस किया, वह मेरे जीवन का एक अमूल्य पाठ बन गया।

दिल्ली की सड़कें, जो हमेशा व्यस्त और भीड़-भाड़ से भरी रहती थीं, अब पूरी तरह से शांत हो गई थीं। पहले जो जगहें हमेशा हरी-भरी और ध्वनि से भरी रहती थीं, अब वे सुनसान और खाली लग रही थीं। कोरोना वायरस ने दिल्ली के आम जीवन को इस हद तक प्रभावित किया कि बड़ी सड़कों से लेकर गलियों तक में पूरी तरह से सन्नाटा छा गया था। दिल्ली के बाजार, मॉल और दुकाने बंद हो चुकी थीं। सरकारी आदेशों के तहत लोगों को घरों में रहने के लिए कहा गया था, ताकि वे सुरक्षित रह सकें और संक्रमण से बच सकें। हालांकि, यह स्थिति अजीब थी, क्योंकि पहले यह महानगर कभी इतनी शांति और सन्नाटे का अनुभव नहीं करता था। इस अनुभव ने मुझे यह समझने का अवसर दिया कि हम शहरों के शोर और हलचल में कितनी तेजी से जीवन जी रहे होते हैं। हम अक्सर इस जीवन की भाग-

दौड़ में अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की उपेक्षा कर देते हैं। लेकिन जब यह भाग-दौड़ अचानक रुक जाती है, तो हमें अपनी असल ज़िंदगी, अपने अंदर के विचारों और भावनाओं से जुड़ने का मौका मिलता है।

कोविड-19 के दौरान दिल्ली में अकेले रहकर, मैंने महसूस किया कि मानसिक तनाव बहुत तेजी से बढ़ सकता है। जब आप घर से बाहर नहीं निकल सकते, संपर्कों में कमी हो जाती है और अनिश्चितता का माहौल बना रहता है, तो मानसिक स्थिति पर इसका असर बहुत गंभीर हो सकता है। कई बार मुझे डर और चिंता का सामना करना पड़ा, खासकर जब कोविड के संक्रमण के मामले लगातार बढ़ रहे थे। जब यह महसूस हुआ कि मैं और मेरे जैसे अन्य लोग सिर्फ घरों में ही बंद हैं और यह महामारी कब तक चलेगी, इसका कोई ठोस जवाब नहीं है, तो मानसिक स्थिति पर दबाव बढ़ने लगा। इस दौरान मैंने महसूस किया कि मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही जरूरी है जितना शारीरिक स्वास्थ्य। मैंने योग, प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास शुरू किया, जो मुझे मानसिक शांति देने में मददगार साबित हुआ। लॉकडाउन के इस वक्त में मैंने यह सीखा कि हमें अपनी मानसिक स्थिति को स्वस्थ रखने के लिए भी समय निकालना चाहिए। साथ ही, यह समझा कि किसी भी तरह के संकट में खुद को मानसिक रूप से मजबूत रखना बहुत महत्वपूर्ण है। लॉकडाउन के दौरान सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक आर्थिक असुरक्षा थी। दिल्ली में, जैसे ही लॉकडाउन हुआ, रोजगार के अवसर ठप हो गए थे। कई लोग, जिनकी रोज़ी-रोटी छोटे व्यवसायों और अस्थायी कार्यों पर निर्भर थी, वे अचानक बेरोज़गार हो गए। मैं खुद भी आर्थिक रूप से बहुत असुरक्षित महसूस कर रहा था, क्योंकि भविष्य के लिए कोई ठोस योजना नहीं थी।

बात केवल व्यक्तिगत वित्तीय कठिनाइयों तक सीमित नहीं थी, बल्कि कई परिवारों को भोजन, दवाइयाँ और स्वास्थ्य देखभाल जैसी बुनियादी चीजों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा था। सरकार और कई स्वयंसेवी संगठनों ने राहत कार्य किए, लेकिन इस संकट ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय समाज में बहुत सी असमानताएँ हैं, जो आपातकालीन परिस्थितियों में और भी स्पष्ट हो जाती हैं। इस कठिन समय ने मुझे आत्म-मूल्यांकन करने का समय दिया। जब बाहर की दुनिया की हलचल पूरी तरह से थम गई, तब मुझे अपनी आंतरिक दुनिया को समझने का अवसर मिला। पहले, कभी भी जीवन के छोटे पहलुओं की कद्र नहीं की थी। अब, मैंने सोचा कि हमारी ज़िंदगी किस दिशा में जा रही है और हम अपने समय का उपयोग किस तरह से कर रहे हैं। इसने मुझे अपने जीवन के उद्देश्य और अपने आत्म-मूल्य की पहचान करने में मदद की। ध्यान और आत्म-निरीक्षण ने मुझे यह समझने का अवसर दिया कि जीवन में तनाव और परेशानी के बावजूद, हमें अपने भीतर शांति और संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता होती है। मेरे भीतर की आध्यात्मिक जागरूकता ने मुझे इस कठिन समय में साहस और उम्मीद दी। यह समय मेरे आत्म-विकास और आत्म-संयम का समय बन गया।

कोविड-19 के दौरान, समाज के भीतर एक नई तरह की एकजुटता देखने को मिली। बहुत से लोग अपने पड़ोसियों, गरीबों, और जरूरतमंदों की मदद करने के लिए सामने आए। चाहे वह भोजन वितरण हो या मास्क, सैनिटाइज़र, और आवश्यक दवाइयाँ वितरित करना हो, कई गैर सरकारी संगठन और स्वयंसेवी समूह इस कठिन समय में मदद के लिए आगे आए। यह दिखाता है कि संकट के समय

में, जब हमारी दुनिया संकट से घिरी होती है, तो इंसानियत सबसे अहम होती है। यह अनुभव मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण था, क्योंकि मैंने देखा कि समाज का हर वर्ग, चाहे वह अमीर हो या गरीब, संकट के समय एकजुट होकर काम कर सकता है। इस महामारी ने यह साबित कर दिया कि एकजुटता में ही शक्ति है।

कोविड-19 महामारी ने पूरी दुनिया को एक गहरे संकट में डाल दिया। मार्च 2020 से शुरू होकर यह संक्रमण भारत में तेजी से फैलने लगा था, और दिल्ली जैसे महानगर में इसकी मार अधिक गहरी पड़ी। मैं उस समय दिल्ली में था, और यह अनुभव मेरे जीवन का सबसे बड़ा संकट साबित हुआ। न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इन कठिन परिस्थितियों ने मुझे जीवन को देखने का एक नया दृष्टिकोण दिया। लॉकडाउन के दौरान दिल्ली में कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा। हालांकि घर में रहते हुए मुझे एक तरह की सुरक्षा का अहसास था, लेकिन जब बाहर का माहौल लगातार बिगड़ता गया, तो असुरक्षा की भावना ने घर कर लिया। कोविड-19 के बढ़ते मामलों ने न केवल शारीरिक रूप से हमें परेशान किया, बल्कि मानसिक रूप से भी हमें संकट में डाल दिया। अस्पतालों में बेड्स की कमी, ऑक्सीजन की आपूर्ति, और चिकित्सा सुविधाओं की कमी ने स्थिति को और भी भयावह बना दिया। हर दिन सुबह उठकर, जो सबसे पहले ख्याल आता था, वह यही था कि क्या आज का दिन सुरक्षित रहेगा या नहीं? क्या मैं या मेरे आसपास के लोग इस वायरस से सुरक्षित रहेंगे? इस असुरक्षा के बावजूद, हम सभी ने देखा कि हर कोई अपने तरीके से इस संकट से जूझ रहा था। लोग एक दूसरे से मिलकर संकट का सामना करने के प्रयास में लगे थे। रिश्तेदारों से संपर्क बढ़ाने के साथ-साथ कई लोग ज़रूरतमंदों की मदद करने के लिए सामने आए। यह संकट भले ही कठिन था, लेकिन इसने समाज को एकजुट होने का संदेश दिया।

लॉकडाउन के दौरान सबसे बड़ा बदलाव जो मैंने महसूस किया, वह था शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव। जैसे ही स्कूल और कॉलेज बंद हुए, शिक्षा ऑनलाइन मोड पर आ गई। हालांकि शुरू में यह बदलाव एक चुनौतीपूर्ण अनुभव था, क्योंकि बहुत से लोग तकनीकी रूप से तैयार नहीं थे, लेकिन धीरे-धीरे इसमें सुधार हुआ। शिक्षकों ने ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से छात्रों को पढ़ाना शुरू किया, लेकिन इसके साथ ही यह भी समझ में आया कि डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में असमानताएँ अभी भी मौजूद हैं। दिल्ली जैसे महानगर में, जहाँ इंटरनेट की पहुंच कुछ हद तक बेहतर है, वहीँ ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में लोग इस शिक्षा प्रणाली का पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे थे। कुछ बच्चों के पास इंटरनेट कनेक्शन नहीं था, तो कुछ के पास स्मार्टफोन या लैपटॉप नहीं थे। इस स्थिति ने मुझे यह एहसास दिलाया कि डिजिटल शिक्षा के जरिए एकजुटता की जगह असमानता बढ़ सकती है, और यह समय है कि हम इस क्षेत्र में सुधार करें, ताकि सभी को समान अवसर मिल सकें।

कोविड-19 के दौरान दिल्ली में एक और दृश्य था जो बहुत ही दिल दहला देने वाला था, और वह था प्रवासी श्रमिकों का पलायन। जैसे ही लॉकडाउन घोषित हुआ, लाखों श्रमिकों ने अपने घर लौटने की कोशिश की। दिल्ली की सड़कों पर पैदल चलते हुए, मासूम बच्चों और परिवारों के साथ प्रवासी श्रमिकों का पलायन एक सच्ची त्रासदी बन गया। इन मजदूरों के पास न तो घर था और न ही

काम। इस स्थिति ने मुझे यह सोचने पर मजबूर किया कि हमारे समाज में एक बड़ा वर्ग किस तरह से मेहनत करता है, लेकिन उसकी मेहनत के सही फल नहीं मिलते।

इस पलायन की तस्वीरों ने मुझे यह एहसास दिलाया कि हमें अपनी समाजिक जिम्मेदारियों का पुनः मूल्यांकन करना होगा। यह संकट केवल एक महामारी के रूप में नहीं था, बल्कि हमारे सामाजिक और आर्थिक असंतुलन को उजागर करने वाला था। हालांकि, दिल्ली सरकार और विभिन्न संस्थाओं ने इन श्रमिकों की मदद के लिए प्रयास किए, लेकिन इनकी स्थिति और भी भयावह होती जा रही थी।

दिल्ली में कोविड-19 के बढ़ते मामलों के कारण अस्पतालों में स्थिति बहुत गंभीर हो गई थी। डॉक्टरों, नर्सों, और अस्पताल कर्मियों ने दिन-रात काम किया, लेकिन इतने बड़े पैमाने पर मरीजों की संख्या और आवश्यक संसाधनों की कमी के कारण यह स्थिति बहुत चुनौतीपूर्ण बन गई थी। कई बार मुझे यह महसूस हुआ कि अगर मुझे किसी भी प्रकार की चिकित्सा आवश्यकता पड़ी, तो क्या मैं उस वक्त अस्पताल पहुँच पाऊँगा? और यदि पहुँच पाऊँ, तो वहां बिस्तर मिलेगा या नहीं?

कई परिवारों ने अपने प्रियजनों को अस्पतालों में भर्ती करने के लिए संघर्ष किया, और अनेक परिवारों को ऑक्सीजन की कमी के कारण अपनों को खोना पड़ा। यह दृश्य दिल तोड़ने वाला था, और यह समय की सच्चाई थी कि हमें स्वास्थ्य सेवाओं की दिशा में सुधार की सख्त आवश्यकता है। कोविड-19 ने यह साबित कर दिया कि हमें अपने स्वास्थ्य तंत्र को और सशक्त बनाने की आवश्यकता है, ताकि भविष्य में किसी भी संकट से निपटा जा सके।

कोविड-19 के बावजूद, इस संकट ने हमें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराया और यह सिखाया कि कठिनाइयों के बावजूद हमें उम्मीद नहीं खोनी चाहिए। एकजुटता, धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ हम किसी भी संकट का सामना कर सकते हैं। इस महामारी ने हमें यह सिखाया कि यदि हम सभी मिलकर काम करें, तो कोई भी समस्या हमें हरा नहीं सकती।

दिल्ली में फंसी हुई इस आपबीती ने मुझे आत्मनिर्भर बनने और जीवन को संतुलित ढंग से जीने का मूल्य सिखाया। हर व्यक्ति को यह समझने की जरूरत है कि चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी हों, अगर हम एकजुट होकर काम करें, तो हर संकट का समाधान संभव है। कोविड-19 ने मुझे यही सिखाया कि समाज का कोई भी वर्ग अकेला नहीं होता, और एक दूसरे की मदद से हम सभी संकटों को पार कर सकते हैं।

यह महामारी न केवल एक चुनौती थी, बल्कि यह एक अवसर भी था, एक नई उम्मीद का अवसर। जब सब कुछ मुश्किल लग रहा था, तब इसने हमें दिखाया कि संकट के बाद भी नए अवसर और नए रास्ते आते हैं। आज हम जिस स्थिति में हैं, उसे देखकर लगता है कि हमने अपने सामूहिक प्रयासों से इस महामारी को हराया।

अब, जब हम इस महामारी से उबर रहे हैं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में कभी भी ऐसा संकट आ सकता है, लेकिन हम उसे धैर्य और साहस के साथ हर सकते हैं। कोविड-19 ने हमें यह सिखाया कि जीवन में हर कठिनाई के बावजूद हमें अपना आत्मविश्वास बनाए रखना चाहिए।

कोविड-19 के दौरान दिल्ली में फंसी मेरी यह आपबीती एक सिखने का अनुभव बन गई। इसने न केवल जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने का मौका दिया, बल्कि यह भी सिखाया कि कठिन समय में उम्मीद और आत्मविश्वास बनाए रखना कितना ज़रूरी है। इस महामारी ने हमें यह समझने का अवसर दिया कि जीवन में असल खुशियाँ और संतुष्टि बाहरी दुनिया से नहीं, बल्कि हमारे भीतर से आती हैं।

दिल्ली में फंसी हुई इस आपबीती ने मुझे मानसिक रूप से सशक्त किया, और साथ ही यह भी सिखाया कि जीवन में कठिनाइयाँ आएंगी, लेकिन हमें उन्हें अपने आत्मविश्वास और धैर्य से पार करना होगा। उम्मीद और एकजुटता से हम किसी भी चुनौती का सामना कर सकते हैं। कोविड-19 का संकट भले ही कठिन था, लेकिन इसने हमें जीवन के असली मूल्य और एक दूसरे की मदद का महत्व समझाया।

शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 61
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कविता

# पूछता क्यों शेष कितनी रात

**महादेवी वर्मा**

पूछता क्यों शेष कितनी रात?
छू नखों की क्रांति चिर संकेत पर जिनके जला तू
स्निग्ध सुधि जिनकी लिये कज्जलदिशा में हँस चला तू-
परिधि बन घेरे तुझे, वे उँगलियाँ अवदात!

झर गये ख्द्योत सारे,
तिमिरवात्याचक्र में सब पिस गये अनमोल तारे-;
बुझ गई पवि के हृदय में काँपकर विद्युत!शिखा रे-
साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात!

व्यंग्यमय है क्षितिजघेरा-
प्रश्नमय हर क्षण निठुर पूछता सा परिचय बसेरा;
आज उत्तर हो सभी का ज्वालवाही श्वास तेरा!
छीजता है इधर तू, उस ओर बढता प्रात!

प्रणय लौ की आरती ले
धूम लेखा स्वर्णकुमकुम वारती ले-अक्षत नील-
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेहउज्जवल भारती ले-
मिल, अरे बढ़ रहे यदि प्रलय झंझावात।

कौन भय की बात।
पूछता क्यों कितनी रात?

*****

**“This page is intentionally left blank"**

शिक्षा संवाद
वीरेंद्र कुमार चंदोरिया
द्वारा RZ-673/135, गली न. 19A , साध नगर, पार्ट -2, पालम कालोनी, नई दिल्ली 110045 से मुद्रित एवं प्रकाशित
दूरभाष - 09868210822.
ई मेल - SHEAKSHIKSAMWAD@GMAIL.COM